वर्जनाओ को लॉघते हुए

(स्त्री-पुरुष सबधो की कहानियाँ)

वर्जनाओं को लाँघते हुए

सपादन
हरदर्शन सहगल



मेधा बुक्स
दिल्ली-110 032



प्रकाशक
मेधा बुक्स
एक्स-11 नवीन शाहदरा
दिल्ली-110 032

मूल्य
150 00

प्रथम सस्करण
सन् 2001

आवरण
नरेन्द्र श्रीवास्तव

मुद्रक
अजय प्रिंटर्स
दिल्ली-110 032

VARJANAON KO
LANGHTE HUE
(Hindi Stories)
edited by
Hardarshan Sehgal
ISBN 81 87110-39-2

बड़े भाई साहब श्री मनोहरलाल जी सहगल
पूज्य बहन कृष्णा तलवाड़ और
छोटे भैया बृजमोहन
के लिए

अनुक्रम

इन कहानियो की बाबत, कुछ

गुनाह गिन के करूँ या बेहिसाब करूँ
सुना है, तेरी रहमत का कुछ हिसाब नहीं।

बेशक खुदा की रहमत, उसके हर बदे पर, बेरोकटोक, बिना किसी भेदभाव, हर वक्त, बेशुमार, बरसती रहती हो, पर उसी (खुदा) के बदों को यह सब कहाँ कबूल है! उसकी मशा तो शुरू से ही रहमत अपने हिस्से मे लेने, और गुनाहो को दूसरा की झोली मे डाल देने की रही है।

जिंदगी के हर मोड और हर मौके पर वही (खुदा का बदा) दूसरे, खुदा के बदों के लिए सबसे बडा नुक्ताचीं बन उठता है, बेशक, इससे किसी दूसरे की जिंदगी मे कितना ही खलल पडे। खलल को तो छोडिए, इस नुक्ताचीनी, ताकझाँक, छींटाकशी और मारपीट से दूसरा का जीना हराम करने मे भी उसे कोई उज्र नहीं, और न ही इसमे कोई पाप दिखलाई देता है। चींटी तक को न मारने का फल्सफ यहाँ खूब चलता है। धार्मिक प्रवृत्ति वाले हम हैं। ईश्वरपूजक बन्ने का ठेका भी हमीं ने ले रखा है। लेकिन दूसरे आदमी की जिंदगी से खिलवाड कर उसे किस तरह से उजाडकर रख देते हैं, इस तबाही का हमे जरा भी अहसास नहीं होता।

आए दिन समाचार-पत्रों म प्रेमी युगलों को बेइज्जत करने, गाँव मे निष्कासित करने, तरह-तरह की प्रताडना देने बल्कि लोमहर्षक कृत्यों द्वारा नगा घुमा-घुमाकर पत्थरों से मारने या जला देने के किस्से किसी भी पाठक के लिए आम बात हो चली है।

अभी हाल ही म हनुमानगढ के सुरेशिया क्षेत्र में रहनेवाले एक प्रेमी जोडे के रेलवे पुलिया के पास सादुल ब्राच नहर में कूदकर जान दे देने का समाचार आया। यह विवाहेत्तर प्रेम-सम्बन्धों का प्रकरण और उसकी परिणति है। दोनों ही विवाहित थे। बाईस वर्षीय गौरी देवी का पति विजयकुमार पोलियो-ग्रस्त बताया गया है।

दोना के परिवारों को पता चल गया था। गृहकलह, लाक-लाज या प्रताडना से डरकर ही दोनो ने मरना बहतर समझा।

सोचना यह होगा कि इस (प्रेम-आकर्षण) मे उन दोनो का दोष क्या और कितना था? जबकि गालिब बताते रह गए—'इश्क पर जोर नहीं' या साहिर लुधियानवी ने स्पष्ट किया—'इश्क न पुच्छे दान-धरम, ते इश्क न पुच्छे जात।'

शायरा के ऐसे, तर्जेकलाम—समझना होगा—फकत मजा लेने के लिए नहीं हैं, अपितु ये मनुष्य के अतर्मन की स्वाभाविक वृत्ति को सहजता स निरूपित करते हैं।

वैज्ञानिक परीक्षणा के आधार पर यदि देखे तो रोमास को मोहित करने की प्रक्रिया कहा जाता है। इस मामले मे उतनी सचाई है, जितनी सामान्यत दिखलाई नहीं देती।

वैज्ञानिकों का कहना है कि महिलाआ के शरीर मे निकलने वाला रासायनिक सदेश जिसे 'फेरोमोन' कहते हैं, पुरुष को इस कदर मुग्ध कर देता है कि वे मान बैठते हैं कि सीधी-सादी महिलाएँ अधिक आकर्षक होती हैं और सुन्दर महिलाएँ उतना आकषक नहीं हातीं, जितना वे दिखती हैं। 'फरोमोन' एक रगहीन, गधहीन रासायनिक सकेत है जो शरीर से निकराता है। समझा जाता है कि यह पशु और मानव दाना क ही व्यवहार को अवचेतन स्तर पर पभावित करता है।

इस प्रकार की व्याख्याएँ राम्बी हैं जिनकी समय-समय पर बारीकी से जाँच की जाती है। इन आधारा पर अन्वेषण कर निष्कर्ष निकाले जाते हैं। उनका गहराई मे जाने की यहाँ अधिक गुजाइश नहीं है। कहने का तात्पर्य इतना मात्र है कि यह स्त्री पुरुष और विशेष-विशेष स्त्री-पुरुषो की आतरिक मनोवैज्ञानिक सरचना पर निर्भर करता है जिसे व्यक्तिविशेष स्वय ऊपरी स्तर पर समझ-जान नहीं पाता। और यदि उसके मुँह से कुछ निकलवाएँ ही तो यही निकलेगा कि वह उस पर, या एक-दूसरे पर बुरी तरह से मरते हैं।

एक अन्य अनुसधान के अनुसार बताया गया है कि जिसे आप बेवफा कह रहे हैं उसका वास्तव मे दोष कितना है—इसे भी समझने की आवश्यकता है। अगर कोई पुरुष किसी पराई स्त्री के साथ इश्क लडाता है अथवा कोई स्त्री किसी पराए मर्द के साथ भाग जाए तो ऐसे लोगो को बेवफा कहकर हम उन पर थू-थू करने लगते हैं (हाँ अपनी कुठाजन्य प्रवृत्ति के कारण मजे, चटखारे ले-लेकर किस्सा बयान करते हैं), लेकिन शोधकर्ताओं का मत है कि इसमे बेवफाई करनेवालों का कोइ दाप नहीं बल्कि उनकी अनुवाशिकीय सरचना का दोष है। यह नतीजा, मनोवैज्ञानिक प्रोफेसर हीज मैचेर ने लबे सर्वे के पश्चात् निकाला है। उनका कहना है कि कुछ पुरुषो और स्त्रियो की अनुवाशिक सरचना ही ऐसी होती है जिससे वे

वैवाहिक जीवन की लक्ष्मण-रेखा को पार करके पराई स्त्री या पुरुष से शारीरिक सबध कायम करने लगते हैं।

इसी विषय पर डॉ० मेयर लिखते हैं कि ऐसी अनुवाशिकीय सरचना वाले लोगो का विवाहेतर यौन सबध कायम करना इतना स्वाभाविक है कि इन्हे किसी तरह का अपराध-बोध होना ही नहीं चाहिए।

परन्तु है।

वैज्ञानिक सिद्धातों को कौन समझता है! उपरिलिखित, अपराध-बोध ही के कारण से गौरी देवी और रोशन ने, आत्महत्या का रास्ता चुना। यदि उन्होंने स्वय यह रास्ता न चुना होता (स्वय आत्महत्या न की होती) तो गाँववाले उन्ह, बरदाश्त न करते। उन्हे बर्बरतापूर्वक मार डालते। ऐसे बहुत-से उदाहरण सहज ही मिल जाएँगे।

यह है हमार मौजूदा वक्त को असली तस्वीर। कहानिया, फिल्मो और खबरा मे ऐसी घटनाएँ पढ-देख-सुनकर हम सवेदनशील हो उठते हैं। प्रताडित अथवा मृतको के साथ हमारी सहानुभूति जुड जाती है, किन्तु प्रत्यक्ष पलो मे, जीवन की इसी बडी सचाई को समझकर उदारतापूर्वक आगे बढकर, ऐसे किसी पात्र के काम नहीं आते। उनके पक्ष मे एक लफ्ज भी बोलने की हिम्मत नहीं करत (कहीं लोग-बाग हम भी *वैसा ही* समझकर तोहमत न लगाने लग।)

कारण, थोपी हुई लोक-लज्जा, मुद्दता से चले आए हम पर हावी सस्कार तथा समाज का आतक, हम किसी भी तार्किक, वैज्ञानिक निष्कर्ष की व्याख्या करने की अनुमति नहीं देता। भले ही हम तथ्यो से अवगत हैं तब भी हमारी जबान लडखडाने लगती है।

जबान लडखडाने के पीछे, हमारा वर्तमान, सामाजिक (विशष रूप से मध्यवर्गीय) ढाँचा अथवा आवरण है, जिसकी अवहेलना करते हुए हम सहमे रहते हैं। परन्तु हम स्वय अपने मन से क्या चाहते है—हमसे बेहतर दूसरा कौन जानता है! हम कहना कुछ चाहते है विवशतावश कहते 'कुछ और' ही हैं। अनैतिकता का भय।

इस तथ्य को साधारण पढा-लिखा व्यक्ति भी जानता है कि समय-समय पर देश काल और समाज की अपनी-अपनी धारणाएँ, मान्यताएँ रहती है—अति निकट सबधिया मे विवाह-प्रथा को आज भी मान्यता मिली हुई है, कुछ हिन्दु समाजो मे भी। जहाँ नहीं मिली है वहाँ इसे घोर तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है।

जो आज अनैतिक कहलाता है वह कभी नैतिक अथवा धर्म-सम्मत कहलाता था। उदाहरण के लिए उषा श्रीवास्तव के आलेख (ज्योत्स्ना पटना मई 1980) 'प्राचीन भारत म नियोग प्रथा' को देखा जा सकता है जिसम उन्होंने

रामायण, रघुवश, अभिधान चिन्तामणि, शब्दकल्पद्रुम के साथ वैदिक और महाभारत युग के बहुत सारे उद्धरण दिए हैं जिनमे प्रजापति ययाति, उर्वशी आदि नामो के साथ भाई-बहन, दुहिता भाभी के ऐसे सबधो को सस्कृत-श्लोकों के माध्यम से स्पष्ट दर्शाया गया है कि यह (नियोग) प्रथा प्रचलित थी (भले ही व्याख्याओ मे सदेह की गुजाइश हो सकती है)।

इसमे किसी प्रकार के दोष का अवकाश नहीं था। पौराणिक युग में भी इसका प्रचलन था और तात्रिक साधनाओ मे भी। सिद्धान्तो मे कामाचरण या नियोग भले ही पृथक्-पृथक् अवगत होते हो, किन्तु व्यावहारिक दृष्टि मे कामाचरण-नियोगाचरण मे कोई पार्थक्य नहीं है।

आलेख मे राजाओ, ऋषि-महर्षियो के ऐसे अन्य कई प्रसग भी मौजूद हैं (यहाँ तक कि परम वृद्ध-तपश्चरण के कारण जीर्ण-शीर्णकाय महर्षि च्यवन राजा ययाति की पुत्री सुकन्या को पत्नीरूप मे ग्रहण करने को आतुर हो उठते हैं)।

यदि प्राणिशास्त्र के अनुसार देखे तो मनुष्य-देह की मूल आवश्यकता को कैसे नकारा जा सकता है।

ऐसे अनेकानेक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उषा श्रीवास्तव इस निष्कर्ष तक पहुँची हैं कि वर्तमानकालीन कोई भी घटना, अभूतपूर्व नहीं है। फर्क बस इतना होता है कि कोई भी विधि निषेधात्मक कार्य, देश काल और पात्र के अनुसार ही समाज मे स्वीकृत-अस्वाकृत होता है।

इसी प्रसग मे ऋषि उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु को भी देखा जा सकता है जिसने, कहते हैं स्वच्छन्द सम्बन्धों को रोककर विवाह-प्रथा चलाई। प्रकट है कि यह आशिक सत्य ही है।

इन्हीं सन्दर्भों मे भगवानसहाय त्रिवेदी का आलेख भी द्रष्टव्य है—भारतीय जीवन-दर्शन आनन्दप्रधान है। इसलिए हमारे यहाँ काम-कला ओर काम-केलि का सविस्तार वर्णन करनेवाला अलग से एक कामशास्त्र उपलब्ध है। उपासना के लिए हमने निराकार ब्रह्म के साथ सर्वांग सुन्दर और सर्वगुण-सम्पन्न सगुण, नयनाभिराम राधा और कृष्ण को भगवान के रूप में स्वीकार किया है। हम शिव और शक्ति के आराधक हैं। हमने सुन्दरता के अप्रतिम प्रतिभाव के रूप मे ही कामदेव और रति की परिकल्पना का है।

सदैव हम जीवन को उसकी समग्रता मे जीने के अभिलाषी रहे हैं। फिर काम हमारे लिए गर्हित कैसे हो सकता है। जब वेद और उपवेद तथा वेदागों में काम वर्जित नहीं है तब पुराण तथा पुराणेतर सस्कृति में वर्जना-क्षेत्र कैसे हो गया?

'ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या' जैसे दर्शन से जनमानस दुविधा में आ गया। जबकि शरीर भी बहुत बडा सत्य है। 'विना शरीर के प्रेम' की कितनी ही

दार्शनिकता बघारी जाए किन्तु शरीरजन्य सुन्दरता, कमनीयता को कैसे नकारा जा सकता है।

मुझे एक सच्चा किस्सा सुनने को मिला—एक मजनू (कॉलेजियेट) अपनी सहपाठिका पर मुग्ध थे। कोई भी प्रेम-प्रदर्शन का अवसर चूकने न देते। उनके मुखश्री से हर वक्त ऐसे ही आलाप सुनाई देते कि मैं तुम पर मरता हूँ 'तुम मेरी आत्मा हो' 'मैं तुम्हे अन्तर्तम आत्मा से चाहता हूँ' 'तुम मेरे स्वर्ग की देवी हो' लडकी ने उसे बार-बार समझाया—यह आसक्ति है। इसे छोडो। स्वर्गिक या अलौकिक प्रेम कुछ नहीं हाता। मजनू कहता—तुम मेरे हृदयतल तक बसी हो। इसे कोई भी शक्ति मुझसे दूर नहीं कर सकती। युवती के यह कहने पर कि तुम केवल मेरे रूप पर मुग्ध हो, लडके ने मानने से साफ इनकार कर दिया।

उस रूपसी ने अपने उस सहपाठी से कुछ दिन न मिलकर 'जमालगोटा' का सेवन किया। दस्ता के जोर से अपने शरीर को मात्र हड्डिया के ढाँचे म बदल दिया।

अब, जब मजनू ने उसे देखा तो वही रूपसी पेतनी दिखलाई पडी। वह भयभीत होकर वहाँ से भाग खडा हुआ।

स्पष्ट है, सहज सौन्दर्य एव प्राणिविज्ञान के नियमो को विरले ही झुठला पाते हैं।

शाक्त, बौद्ध धर्म के हीनयान पथो मे विकृत रूप से कामपूर्ति के प्रयन्न सामने आए। सुना जाता है भिक्षुणियाँ नवजात शिशुओ को कमडलो म डालकर जगलो मे फक आती थीं। इसी प्रकार नर्नों क क्रियाकलाप भी सहज उजागर होत है। देवदासियों और मठाधाशों के आचरण भी किसी से छिपे नहीं हैं।

सहज कामप्रवृत्ति के दमन के कैसे-कैसे नतीजे सामने आते है—इसकी व्याख्या चिकित्साशास्त्र करता है। यह मुद्दा सआदत हसन मटो की कई कहानियो से भी साफ जाहिर होता है।

आर्थिक और सामाजिक कारणो से मुक्त काम-चेष्टाएँ या तो राजन्य वर्ग और सामन्तो तथा उच्च श्रेष्ठ वर्ग तक सीमित रह गईं या फिर घोर गरीबी से आहत किन्तु अपनी विधातादत्त स्थिति से यत्किंचित् सन्तुष्ट पिछडे आदिवासी कबीलों मे नैसर्गिक आनन्द-प्राप्ति का यह साधन और माध्यम माना जाता रहा। पर मध्यवर्ग ने 'जो स्वय को सास्कृतिक चेतना का अग्रदूत मानता रहा है' मुक्त काम-चेतना को असामाजिक, असास्कृतिक करार दिया। सतो और आचार्यों ने भी उनका साथ दिया और वे समय-समय पर अपने प्रवचनो और धार्मिक आख्यानों के माध्यम से इस विचारधारा को पुष्ट करते रहे।

काम-वर्जना को कठोरता से लागू करने के लिए सामाजिक नियत्रण और प्रतिबध कडे किए जाते रहे। परन्तु जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है ऊपर से

थोपे गए प्रतिबध बहुधा सफल नहीं होते। यदि कोई व्यक्ति स्वत आन्तरिक रूप से आत्मनियंत्रित हो जाए, तब तो सभवत चित्र का दूसरा पक्ष होगा, वरना आत्मिक सयम के अभाव मे कृत्रिम बाह्य नियत्रण सदा विपरीत प्रतिक्रियाओ को ही जन्म देते हैं।

सभवत आज के समाज मे, बलात्कार—(बालिकाओं और वृद्ध महिलाओ के साथ भी), नारी-उत्पीडन और यौन विकृति की चेष्टाओ के मूल मे, यही दमित अनियंत्रित कुठाएँ ही परिलक्षित होती हैं।

सुना यही जाता है कि जिन पाश्चात्य आधुनिक देशों मे यौन प्रतिबन्ध नहीं है, वहाँ पर ऐसे तुच्छ घृणित जुगुप्सा पैदा करनेवाले कृत्य प्राय देखने को नहीं मिलते, यानी बूढी या विक्षिप्त औरतों या बालिकाओं के साथ तो क्या बिना सहमति के किसी भी श्रेणी की स्त्रियो से जोर-जबर्दस्ती की घटनाएँ नगण्य हैं।

यहाँ पर मैं अपने को दो स्थूल दृष्टान्त देने से रोक नहीं पा रहा जो विषय की गहराई म जाने के लिए सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

बुर्का ओढे एक महिला तागे की पिछली सीट पर बैठी थी। तागा सरपट भागा जा रहा था। कुछ मनचले लडके अपनी साइकिलो पर सवार होकर उसका पीछा करते रहे। सुनसान सडक पर पीछे बैठी औरत ने बुरका उठाया और बोली "लो देख लो अपनी अम्मा को।"

लडके भौंचक्के-से अपनी झप मिटाते खी-खी करते लौट आए।

दूसरा दृष्टात भी मनचल युवको का ही है। यह भी एसा ही कुठा की ओर इगित करता है और साथ ही यह भी दर्शाता है कि 'नेक करम करो बहिश्त में हूर मिलेगी' वाली थ्योरी या फार्मूले से काम बननेवाला नहीं। जब कामना ही अप्सराओं की है तो उसके लिए तपस्या क्यों की जाए, वह भी लम्बी सदेहास्पद और अनिश्चित प्रतीक्षा के साथ। क्यो न उन्हे (परियों को) अभी और यहीं हासिल कर लिया जाए।

एक लडकी सूनी सडक पर साइकिल से घर लौट रही थी। रास्ते मे कुछ मनचलों ने उसका पीछा करना शुरू कर दिया। वे सभी बढ-चढकर अपनी-अपनी साइकिल दौडाने लगे। उनमें से एक लडका पहले उस लडकी के करीब जा पहुँचा (खुशी हुई जैसे रेस मे बाजी मार ली हो)। लडकी की साइकिल डगमगाई। बेचारी साइकिल से नीचे गिर पडी।

फिर क्या था! पलक झपकते ही उस अव्वल आनेवाले लडके को बाकी लडके झापडों से पीटने लगे। कुछ और राहगीर करीब आए। माजरा जाना। सभी की नजरों में 'पहला लड़का हो' लफगा था (जो रह गए वे शरीफ)।

यहाँ पर हम स्वच्छन्दता या वहशत की हिमायत नहीं कर रहे तो भी जानना

चाह रहे हैं कि आखिर यह माजरा, झमेला और पूरा गोरखधधा क्या है ? जो चीज हम अपने लिए चाहते हैं, वही चीज दूसरे के लिए वर्जित क्या ठहराते हैं ?

साधु-सन्त, धर्मगुरु आदि जो शिक्षाएँ अपने प्रवचना मे देते हैं, बहुत बार वही धर्मगुरु उनका उल्लघन करते पाए जाते हैं। मोटे तौर से, हम अपने परम्परागत एव सावजनिक मूल्यो को आधार मानते हुए सदा स्वतत्रता के पक्षधर तो रहे हैं, किन्तु लम्पटता, उच्छृखलता, स्वच्छद एव मुक्त आचरण के लिए हमारे जीवन-दर्शन में कोई स्थान नहीं।

जिन आधुनिक यूरोपीय देशों की चर्चा प्राय हम लोग गप-गाष्ठियो म करते रहते हैं कि वहाँ पर स्त्री-पुरुष क बाच खुलकर मिलन, नाचने, गाने से लेकर और आगे बढकर हर तरह के सम्बन्धो को मान्यताएँ मिली हुई हैं, सोचना होगा कि वहाँ विवाहपूर्व या विवाहेतर सम्बन्धा का क्या स्थिति है? मान्यता-सा मिलन क बावजूद वहाँ के पुरुष तथा स्त्री कितने खुश अथवा नाखुश हैं। विवाह-पूर्व की बात जाने भी दें ता क्या विवाह-पश्चात् हर नारी या पुरुष अपने साथी पर एकाधिकार नहीं चाहता? परगमन पर वे बुरी तरह से तिलमिला नहीं उठते, विचलित नहीं होते? वहाँ का विपुल साहित्य पढने से ये सारी चीजे सहज ही समझ मे आती हैं कि कोई अपने साथी (पति या पत्नी) को गैर की ओर आकर्षित होते नहीं देख सकता। केथरीन मैन्सफाल्ड का कहानी 'ए कप ऑफ टा' को पढा जा सकता है जिसम नायिका किसी स्त्री पर तरस खाकर अपने यहाँ ले आती है। जब पाती है कि पति महादय भा उस पर अतिरिक्त कृपा-भाव क साथ-साथ किंचित् उसक सौन्दय से भी आकर्षित हो रहे हैं तो नायिका उस स्त्री की आर्थिक मदद कर घर से विदा कर देती है। इससे स्पष्ट है कि कोई भी अपने साथी को गैर की बाँहो मे बरदाश्त नहीं कर सकता।

स्वच्छन्द आचरणवाली स्त्री को पुरुष कुलटा, कुतिया तक कह डालता है और स्त्री ऐसे पुरुषो को लम्पट, आवारा साड आदि नामो से विभूषित करती है। जाहिर है कि नाजायज रिश्तो की वजह से भी वहाँ अधिकतर तलाक होते हैं।

इन सब तथ्यो को जानते-समझते हुए कि कोई भी अपने साथी के अन्यत्र सम्बन्धों को स्वीकार नहीं करता फिर क्या अनेकानेक कारणो से मनुष्य (पुरुष या स्त्री) अपने साथी के अतिरिक्त दूसरो के साथ ऐसे सबध स्थापित करते हैं, जिन्हे समाज और परिवार हेय दृष्टि से देखते है? यह एक जटिल विषय है जिसकी दो-टूक व्याख्या नहीं की जा सकती। इस सग्रह म ला गई कुछ कहानिया क माध्यम स जीवन के इसी सत्य को दर्शाना हमारा अभीष्ट है। वैसे इस जटिल विषय को लेकर विपुल साहित्य लम्बे अर्से से रचा जाता रहा है। राधा-कृष्ण गापिया अप्सराआ, नगरवधुआ अभिसारिकाओ नायिकाआ की ताक-झाँक के वर्णन हमारी समग्र

उत्कृष्ट कृतियो मे भरे पडे हैं।

विहारी, पृथ्वीराज राठौड, विद्यापति, कालिदास के काव्यों मे क्या नहीं है?

तब लगता है यह जटिल नहीं, सहज प्रवृत्ति है। इसे उसी रूप एव परिप्रेक्ष्य मे देखने की आवश्यकता है। थोडी-सी उदार दृष्टि-सम्पन्नता ही ऐसे सम्बन्धो के साथ किंचित् न्याय कर सकती है, जिससे बहुत सारे परिवार चरमराने, उजडने से बच सकते हैं, बहुत सारे मनुष्य अकालमृत्यु के गर्त मे जाने से बच सकते हैं।

जोर-जबर्दस्ती, बहकाना, फुसलाना, अत्याचार, बलात्कार अनाचार हमारी कहानियो का विषय कदापि नहीं है। किसी भी सभ्य समाज मे बर्बरता को न तो प्रश्रय दिया जा सकता है और न उसे मान्यता ही दी जाती है। कोई बेबस होकर इन अत्याचारो को बरदाश्त करता है तो यह एक दूसरा पहलू है। तब अवसर आते ही वह रिवोल्ट (प्रतिकार) जरूर करता है।

लेकिन यहाँ हमारा विषय 'स्वय से बेबसी' का है। चेखव की कहानी 'आपद्' को ले। नायिका सोफ्या पैजोवना चाहे-अनचाहे पडोस मे रहनेवाले वकील इलियन की ओर आकर्षित होती है। वकील सोफ्या के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध है। उसके लिए चौबीस घटे छटपटाता है। उसके बिना रह नहीं सकता— यह सब जानते हुए कि सोफ्या विवाहिता है एक बेटी की माँ है, इसे वह स्वय भी अच्छा कर्म नहीं मानता। दूसरी ओर सोफ्या पैजोवना भी हर समय पश्चाताप म डूबी रहती है कि वह अपने पति और बेटी के साथ छल कर रही है तो भी नए प्रेमी की वाँहो मे जाने को विवश है।

इसी प्रकार अन्तोन चेखव की और कई कहानियाँ देखी जा सकती हैं, 'ए लेडी विद डॉग' (कुत्तेवाली महिला या रोमास) गजब की कहानी है जो पढते ही बनती है। पढे-लिखे नैतिक मूल्यो का पालन करनेवाले समाज और भगवान से डरनेवाले भी अचानक जिंदगी के ऐसे मोड पर आकर कितने असहाय हो उठते हैं। तमाम खतरा क बाच से कैसे-कैसे रास्ते निकालते रहते हैं। भयभीत भी हैं रोमाचित भी हैं परेशान भी हैं—रुस्वाई का डर खाए जा रहा है, मगर व्यक्ति व्यक्ति (स्त्री-पुरुष) के उत्कट आकर्षण से ओत-प्रोत बेबसी के आलम मे प्यार मे जिए जाते हैं।

परन्तु, कुल मिलाकर यह तथा ऐसी कहानियाँ मूलरूप से भाग्य की विडम्बना (Irony of fate) की कहानियाँ हैं कि किसका किसके साथ जीवन-निर्वाह होना चाहिए था और किसके साथ बँध गए (*रोमास* के नायक-नायिका पूर्व-परिचित तो थे नहीं)। ऐसे स्त्री-पुरुषों के परस्पर आकर्षण का कारण उनकी आतरिक गूढतम एंद्रिक ग्रथियाँ ही हो सकती हैं यानी चुबकीय प्रतिध्वनि। अधिकतर जोडे *मिसफिटनैस* के शिकार होकर, छटपटाते हुए, तिल-तिल मरते

हुए जीवन गुजारते हैं। भारतीय समाज मे तो आज भी अधिकाशतया किसी की कोई च्वाइस होती ही नहीं। बस, शादी होती है।

यहाँ हम इस भूमिका के बहुत अधिक विस्तार से बचते हुए स्टीफन ज्विग, मोपासाँ, गोर्की आदि विदेशी लेखका की कुछ कहानिया का तरफ भी पाठको का मात्र ध्यान खींचना चाहेगे, जिन्ह पढने से स्पष्ट आभास मिलता है कि अन्दर से कोई मानव-समाज विवाहेतर सम्बन्धों को शुभ कृत्य स्वीकार नहीं करता, किन्तु जैसा कि पहले कहा गया है कि हमारे यहाँ स्थितियाँ कई कारणा से अत्यन्त भयकर रूप ग्रहण कर लेती हैं। मात्र नैतिक धार्मिक, शिक्षा-उपदेशा से स्त्री-पुरुष के ऐसे कथित, तथाकथित अनैतिक अवैध सम्बन्धा का विराम नहीं लगता।

दरअसल मन, शरीर की चेतनाओ का समुच्चय मात्र है। मानसिक विकृति भी शरीर से स्वतत्र नहीं हाता। समाज व्यवस्था और परिस्थितियाँ समय-समय पर अपने नियम, सिद्धान्त बनाती रहती हैं। काम-प्रेम को कभी अध्यात्म या धर्म तो कभी नैतिकता या आदर्श निष्ठा के नाम पर दबाने की प्रवृत्ति से एक तो काम की भूख मिटती नहीं, अपितु उसको अभिव्यक्ति अथवा परिणति अनेक बार भयकर विस्फोट के रूप म प्रकट होती है जो व्यक्ति एव समाज दोना ही के विकास के स्वास्थ्य के लिए अवरोधक व हानिकारक है।

कुबेरनाथ राय लिखते हैं—"मृग अकेले रहने पर जब रमण-तृषा से व्याकुल होता है और उसे मादा नहीं मिल पाती ता लोगा पर सींग स आघात कर बैठता है। उसका नर्म, कोमल स्वभाव क्रूर हा उठता है। मेरा खयाल हे कि मानवीय स्वभाव को कोमलता के लिए भी नारा-सयाग आवश्यक है। छोटे-छोटे बच्चे निष्पाप स्वभाव के होते हुए भी क्रूर होते हैं, तितलियाँ या वनपाखी पकडकर क्रूरतापूर्ण व्यवहार करके आनन्द पाते हैं—यह आनन्द मात्र रक्त की उत्तेजना का आनन्द है। भय क्रूरता और चटक रगो के प्रति आकर्षण के मध्य बाल-मानस विकसित होता है। फ्रायड इस क्रूरता का सुप्त कामेच्छा कहेगा पर मेरा मत बिल्कुल विपरीत है। मैं सोचता हूँ—यह इसलिए है कि उनमे काम की सहानुभूति का जन्म नहीं हुआ है। उसी तरह बूढों म भा दया-मया नहीं रहती। वे स्वभाव से क्रूर और नीरस हो जाते हैं क्योंकि उनकी कामेच्छा दैहिक और मानसिक दोनों स्तरो पर मर गई होती है। वे स्थाणु (जडवत्) हो चुके होते हैं। मेरी धारणा है कि सृष्टि तभी तक सुन्दर और कोमल है जब तक हम रति-समर्थ हैं—तन से न सही, मन से ही। जिस दिन हम रति-सवदना भूल जाएँगे उस दिन से समस्त सृष्टि असुन्दर क्रूर और कुरूप हो उठेगी उस दिन से ये रग ये फूल, ये छवियाँ, ये हवाओ के गान शव हो जाएँगे, शैतान का इश्वर पर पूर्ण विजय हो जाएगी और सारी सृष्टि अधकारमय नरक बन जाएगी। नारी-सौन्दर्य के प्रति एव रति के प्रति मोहभग (डिस्इल्यूजनमेट) का जो

नया नारा नवलेखन म चल गया है, उसम इसी कारण स मुझे नरक की दुर्गन्ध मिलती है। रति-क्रिया मात्र पाशविक व्यापार नहीं, कामाध्यात्म है। यह सुन्दर है यह अपूर्व है, यह अमृत है। इसके स्पर्श स कुरूप लोहा भी एक क्षण के लिए सोना बन जाता है।''

स्पष्ट है कि कुवरनाथ राय का मन्तव्य शारीरिक ऊर्जा से है। इसी उर्जा से जीवन म उत्साह-उमग का सचार होता है और जीवन आनन्दमय बना रहता है। यहाँ पर फिर से यह स्पष्ट करना भा अप्रासगिक नहीं होगा कि *बिना शरीर प्रम* अपवाद मात्र ही हो सकता है जो मनुष्य को मायावी लोक म ले-जाकर बहकाता रह सकता है। नानक सिंह का उपन्यास *पवित्र पापी* तथा धमवार भारती का उपन्यास *गुनाहो के देवता* को ही देख ल।

सावित्री यम से प्रार्थना करती है कि मरे पति सत्यवान म ऐसे प्राण डाल द कि वह सौ पुत्र उत्पन्न करनेवाला युवा बना रह। सोचना होगा कि क्या आध्यात्मिक प्रेम से सौ पुत्र पैदा हो सकते हैं? अत घूम-फिरकर वहा निष्कर्ष सामने आता है कि रति की प्रच्छन्न प्रेरणा से ही आकर्षण और प्रम होता है।

स्त्री-पुरुष का एक-दूसरे के प्रति आकर्षण बहुत कुदरता है। यह स्वाभाविक प्रबल ओर साथ ही जटिल भी होता है। *प्रम का सार* म यशपाल ने लिखा है—प्रेम शरीर से किया जाता है, आत्मा से नहीं।

रही बात सामाजिक और धार्मिक नियमा की। देखा जाए तो वे परम और चरम सत्य नहीं हैं, सिर्फ सुविधा क लिए बनाए गए हैं। अफसास तब होता है जब किन्हीं डाकुआ-गुण्डो द्वारा अपहत विवश नारी को वही—जन्म देनेवाने माँ-बाप सग-सम्बन्धी जो अपनी विवशता और बाहुबल के अभाव के कारण उसकी रक्षा करने म असमर्थ ओर विफल रहे, अपनी बेटी बहन को फिर से अपनाने म असमर्थता व्यक्त करते हैं। पाकिस्तान मे रोक ली गई औरता की दुर्दशा की अनक करुण कहानियाँ (यथार्थ घटनाएँ) एक नहीं अनेक हैं।

माँ बेटी से कहती है—बेटी तुझसे लाड तो बहुत करती हूँ पर खुले मे तुझसे लाड नहीं लडा सकती। लोग क्या कहेगे? लोक-लाज भी तो कोई चीज है। *लागा को पता है कि तू पूरे दो साल तक हमसे बिछुडकर गुम रही।* रिश्ते केवल खून के ही नहीं होते। वे जब सामाजिक वातावरण के आडे आने लगते हैं तब माँ-बाप भाई-बहन होकर भी माँ-बाप भाई-बहन नहीं रह जाते। इसी सदर्भ म सीता की अग्नि-परीक्षा कथा को भी लिया जाना चाहिए।

जहाँ पर ऐसी सोच और एसे हालात हा वहाँ स्वेच्छापूर्वक घर से बाहर कदम रखनेवाली स्त्री की क्या दशा होती है सभी भलीभाँति जानते हैं।

घोर लज्जा, सामाजिक और पारिवारिक भय और कुठा आदि कारणों से

अधिसख्य जनमानस, ऐसे-वैसे सबधो से बचता फिरता है। बेशक, अपने लिए लुकाछिपी का खेल खेलता फिरता, नजर आता है, या आत्मरति-ग्रस्त रहता है, या फिर 'सुअवसर-आकाक्षी' बनता है और एस 'सुअवसर' के अभाव म, अपने को निहायत शरीफ और दूसरो को अधम गिरा हुआ, लुच्चा-लफगा बताता फिरता है। स्पष्ट है ऐस मानदण्ड पूर्णत खोखले होते हैं परन्तु प्रश्न यह है कि अपने बनाए मानदण्डो का पालन तो हमीं से अपेक्षित है। यह भी सत्य है कि ऐसी घोषित अथवा अघोपित यह 'शराफत' ही काफी सीमा तक हमारे परिवार-समाज को नियत्रण म रखे हुए है। हमारे किसी अग्रज लेखक ने लिखा है—हाय! हमे इतनी सुदर महिलाओ को बहनजी बेटी, भाभी इत्यादि कहना पडता है (मजबूरी—वरना जूते)।

वरना वरना और वगरना, पुरुष के लिए नारी और नारी के लिए पुरुष के अटल सत्य एव स्वाभाविक खिंचाव को कैस नकारा जा सकता है।

जीवन प्रकाश जोशी के लबे गीत की कुछ अग्रिम पक्तियाँ—

लौ झिलमिल झिलमिल जलती हो
सकेत मिलन का करती हो
परवाना उस पर जले नहीं, यह बात असभव लगती है

हरिवशराय बच्चन ने अपने सस्मरण 'दश द्वार से सोपान तक' मे पृष्ठ 30 पर उल्लेख किया है—

परम्परागत मर्यादाओ मे बँधी भारतीय नारी की बडी मुसीबत है। किसी पुरुष के प्रति यदि उसमें प्रेम जागे तो वह सीधे साफ शब्दो म यह नहीं कह पाती कि मैं तुमसे प्रेम करती हूँ। प्राय वह उसे अपना भाई बनाती हे। उसकी कलाई पर राखी बाँधती है और इस प्रकार उससे किसी सबध से जुडकर उसे सखा साथी, मित्र, प्रेमी बना, पति के रूप मे भी पाने की कामना करती है। साहित्य का दुनिया से मुझे दो उदाहरण याद आते हैं। सुनता हूँ कि पुष्पा ने भारती (धर्मवीर भारती) के हाथ म पहले राखी ही बाँधी थी आज व उनसे एक पुत्र, एक पुत्री की माँ हैं। नन्दिता जी को आज प्राय सभी लोग भगवतीचरण वर्मा की पत्नी के रूप मे जानते हैं। उन्होने भी पहले वर्मा जी के हाथ म राखी ही बाँधकर बहन का रिश्ता कायम किया था। भगवती बाबू ने अपना काव्य-सग्रह 'मानव' (1940) नन्दिता जी को समर्पित करते हुए लिखा था—'असीम ममता और भावना की प्रतिमूर्ति, जीवन की कोमलता व चेतना जिसमें प्रतिबिम्बित है—ऐसी परम करुणामयी बहन नन्दिता को कविताओ का सग्रह सादर समर्पित है।'

इसी प्रकार पृ० 363 पर बच्चन जी आगे लिखते हैं—"हिन्दुस्तानी लडकी तो बहन बनकर ही लडकों स परिचय आरम्भ करती है। रमोला ने भी अमिताभ

और अजिताभ (बच्चन जी के बेटे) के हाथों पर राखी बाँधकर अपना संबंध शुरू किया था। बाद में यह अजिताभ की पत्नी बन गई।"

पूर्व में हमने महिलाओं के शरीर से निकलने वाले रासायनिक संदेशों (फेरोमोन) का उल्लेख किया था। स्पष्ट है कि जीवन के तथा जीव-संरचना के विविध पहलू हुआ करते हैं। बनाव-शृंगार तथा ऊपरी आकर्षण को भी कतई नकारा नहीं जा सकता। एक समाचार के मुताबिक 1932 में जर्मनी के कॉर्लस्वाड शहर में 'ब्यूटी कम्पीटीशन' आयोजित किया गया था। करीब चालीस षोडशी, सप्तदशी किशोरावस्था लाँघकर यौवनावस्था में पैर रखने वाली सुन्दरियाँ, प्रत्याशी बनीं।

एक-एक करके प्रतियोगी तरुणी मंच पर आती। सुन्दर वस्त्र विचित्र वेशभूषा तथा रहस्यमय भाव-भंगिमा। विचारकों के सामने कुछ देर खड़ी रहकर धीरे-धीरे मंच से उतर जातीं।

अन्त में एक विजेता की घोषणा हुई। वह अपूर्व सुन्दरी थी। कंधों तक लटके घने घुँघराले बाल, बड़ी-बड़ी आँखें तथा सुन्दर मुखाकृति। उस अनन्य महिला का नाम स्पोटेशंच कार्ल मारिशिका था। आयोजकगण उसे आदर के साथ मंच पर ले गए। दर्शकों के सामने उसे विजेता-मुकुट पहनाया गया। तदुपरान्त रीति के अनुसार मारिशिका से एक छोटा-सा भाषण देने का अनुरोध किया गया। उस महिला ने गर्व से मुस्कुराकर सबका अभिवादन किया, कहा कि पुरस्कार पाने के कारण वह बहुत आनन्दित है तथा बहुत अधिक उत्तेजना अनुभव कर रही है। आभार की दो-एक बातें और कहकर आगे जो कुछ उसने कहा उससे सबकी आँखें फटी की फटी रह गईं—वह स्त्री न होकर एक पुरुष है।

बताया गया है कि यह इस तरह की अकेली घटना नहीं है।

ऐसी घटनाएँ भी यही दर्शाती हैं कि इस जगत में आकर्षण एवं नारी-सौन्दर्य को सहज भाव से अनदेखा नहीं किया जा सकता।

अब थोड़े में श्लीलता-अश्लीलता की चर्चा भी कर ली जाए। साहित्य-जगत तो सदा से श्लीलता-अश्लीलता की बहस में उलझता रहा है। यह बहस जी का जंजाल बनी रहती है। यह बहस अनंत और अगम्य दिखलाई पड़ती है। परिस्थितिजन्य या समय-सापेक्ष व व्यक्ति-सापेक्ष या फिर उम्र का तकाजा, समाज और संस्कार बहुत सारे तथ्य हैं जो इस संदर्भ में विवेचना की माँग करते हैं। स्तनपान कराती स्त्री को देखकर कोई युवक कई-कई दिनों तक बेहाल बेचैन होता रहा—वही युवक प्रौढ़ावस्था में स्तनपान कराती स्त्री में—सृष्टि में—अपूर्व मातृत्व के दर्शन करता है।

साहित्य मनुष्य-मनुष्य को देखकर खाँचों में नहीं रचा जाता। जिन कहानियों को यहाँ संकलित किया गया है उनके माध्यम से ऐसे कथित तथाकथित अनैतिक

अवैध सम्बन्धो को मान्यता दिलवाना हमारा प्रयोजन नहीं है, तो भी रूढिग्रस्त समाज मे ओढे हुए सस्कारा, व्यतीत समय की अप्रासगिक मान्यताओ से किंचित् मुक्त होकर, एक उदार दृष्टिकोण अपनाने की अपेक्षा तो अपने वर्तमान समाज से की ही जा सकती है।

'ब्रजमणि शूर्पणखा ने लक्ष्मण पर मोहित होकर प्रणय-निवेदन किया, विवाह-इच्छा प्रकट की।' (तब तो राजकुल मे बहुपत्नी प्रथा भी प्रचलित थी। स्वय लक्ष्मण के पिता दशरथ की तीन रानियाँ थीं। खैर!)

पाठक स्वय सोच सकता है शूर्पणखा ने ऐसा कौन-सा जघन्य अपराध कर डाला? इस पर लक्ष्मण ने उस नारी के कान-नाक काट दिए। क्या यह आचरण किसी क्षत्रिय की शूरवीरता का परिचायक है? चारित्रिक बल का प्रदर्शन करता है? मुझे तो यह घटना अत्यत लोमहर्षक जान पडती है।

दूसरी ओर शूर्पणखा का प्रणय-निवेदन निहायत कुदरती, प्रकृति-प्रदत्त है, और लक्ष्मण की यह हरकत भोडी, कुत्सित। देखा जाए तो इससे बढकर अश्लीलता की क्या मिसाल होगी? यह मेरा निजी मत हो सकता है।

अतएव पूर्व तथा वर्तमान देश-विदेश के परिप्रेक्ष्य में इस पुस्तक की कहानिया को देखना होगा। ये कहानियाँ नितात निष्पक्ष तथा मौलिक हैं जो हम-आप से समाजशास्त्रीय विवेचना की माँग करती हैं। बच्चे का निर्णय, जीवन को देखने-परखने का कोण, प्रकृतिजन्य तथा निष्कलक होता है। (बडा होने भर ही, वह समाज द्वारा सचारित ऊँच-नीच आरोपित सामाजिक जीवन-मूल्यो के प्रति सजग होने लगता है।) बहुधा बच्चा ही निष्पक्षता का प्रतिनिधित्व करता है। अत यहाँ दो-एक कहानियाँ उन्हीं मानदण्डो का निरूपण भी करती हैं। स्टीफन ज्विग के लघु उपन्यास 'मार्मिक रहस्य' की स्थितियो का लेखा-जोखा एक बच्चे ही के माध्यम से हुआ है।

एक बात और, यदि पति-पत्नी के बीच परस्पर सतुलन, सामजस्य नहीं है—प्राय इसके पीछे भी यौनवेत्ता जो देखते हैं, वह उनके दाम्पत्य सबधों मे सहज, नैसर्गिक आकर्षण का अभाव ही (बताते) हैं—तब वहाँ पर भी पारिवारिक ढाँचा चरमराया-सा रहता है। भले ही हम ऊपर से समाज की नजरों म आदर्श दम्पती बने रह।

आवश्यकता अतर्मन से जागृत सच्ची आदर्शवादिता की होती है जो अपवादस्वरूप ही देखने को मिलती है। दरअसल आरोपित आदर्शवादिता कोई मान नहीं रखती। ऐसी भावावेश से निर्दिष्ट आदर्शवादिता बाद में हमारे सामने नाना प्रकार की समस्याएँ पैदा करती है। उन समस्याओ मुश्किलो का सामना हर किसी के वश की बात नहीं होती।

इन्हीं चीजो से सचेत होकर ही हम साधारण मनुष्य बेमेल कुरूप असमर्थ अपाहिज व्यक्तियो को जीवन-साथी बनाने स बचते फिरते हैं। जर्मन लेखक स्टीफन ज्विग के विश्वविख्यात उपन्यास Beware of Pity (बुजदिल) में कुछ ऐसे ही सकेत-सदेश छिपे हुए हैं। उपन्यास की नायिका एक सुन्दर किन्तु विकलाग युवती है। कथानायक उसके रूप-सौंदर्य पर आकर्षित होता है। प्रेम करता है। बाद मे उसे उस रूपसी के लँगडेपन का पता चलता है। कथानायिका भी युवक से गहरे तक प्रेम करने लगती है। उसके प्यार मे पागल बनी रहती है। कथानायक उस रूपसी के अमीर पिता की अपार सम्पत्ति का एकमात्र उत्तराधिकारी बन सकता है, बशर्ते वह उस लँगडी कन्या का सहारा (जीवन-साथी) बन जाए। इससे उस अमीर को भी कितना नैतिक बल मिल सकता है! किन्तु नहीं नायक पलायन कर जाता है। छिटक जाता है। 'बुजदिल'!

स्टीफन ज्विग की अतर्हित भावना, मानवता के उच्च आदर्शों के प्रति आस्था जागृत करना है। स्पष्ट है कि ऐसी बुजदिली, सबल समाज-निर्माण मे आडे आती है। मनुष्य के थोडे त्याग द्वारा सुदृढ समाज की सरचना हो सकती है।

यहाँ पर हम यथार्थ एव आदर्श के बीच निरन्तर द्वद्व की स्थिति पाते हैं।

बलिदान परित्याग, उत्सर्ग किसी के लिए मर मिटना जीवन का आदर्शवादी पक्ष है। यह भी जीवन-यथार्थ है, किन्तु विशाल जगत मे न्यूनावस्था मे। इसीलिए ऐसे जीवन-मूल्यो के प्रति हम नतमस्तक होते हैं।

परन्तु अपवादा को छोड, आरभकाल से ही थोडे-बहुत अतर से मनुष्य-स्वभाव ऐश्वर्ययुक्त, स्वच्छन्द आनन्दमय जीवन जीने का आकाक्षी रहा है। मूल रूप से स्त्री तथा पुरुष अपनी विशेष प्रकार की कुछ रहस्यमय जीवन-तन्तु-सरचना द्वारा निर्दिष्ट होते हैं, जिसे हम उनका परस्पर प्यार कहते हैं—सच्चा प्यार। यह एक सहज किन्तु उच्च श्रेणी का आकर्षण है—दो के बीच प्रॉपर ट्यूनिंग। पूरा सामजस्य। तालमेल बैठ जाना। या कभी-कभी किसी को यह कहते भी सुना जाता है कि भगवान ने इन दोनो को 'केवल एक दूसरे के लिए' बनाया है।

दूसरे खुले शब्दों मे उन दोना के बीच कामजन्य अथवा वासनामय आकर्षण कहने मे भी ऐतराज या सकोच नहीं होना चाहिए। अगर यह सब न होता तो लैला-मजनू, शीरीं-फरहाद हीर-राँझा ढोला-मारू सस्सी-पुन्नू, सोहनी-महिवाल इत्यादि भी न होते। अतत जनसमूह की नजरा म यही सच्चा बुलदियों को छूनेवाला प्यार बनता है या कहलाता है। उसका ग्राफ थोडा-बहुत अलग-अलग ऊँचा-नीचा हो सकता है।

कहना असगत न होगा कि सहज प्राकृतिक प्रेम के वशीभूत कुछ स्त्री-पुरुष समाज के नकारात्मक पक्ष से अवगत होते हुए भी पूर्व तथा वर्तमान स्थापित मूल्यों

की, अवहेलना जाने-अनजाने, करने को विवश हो उठते हैं (मैं दुनिया की रीत निभाऊँ या प्रीत निभाऊँ)।

यह विवशता, व्यक्तिगत स्वार्थ से लेकर श्रेष्ठ दायित्वबोध की यात्रा हो सकती है। इसी मे वे अपने जीवन-अस्तित्व की सार्थकता पाते है। उनके लिए एक-दूसरे के लिए मर-मिटने, जीने-मरने के अतिरिक्त सब-कुछ निरर्थक है, व्यर्थ है। कभी ऐसे प्यार के रिश्तो की एक छोटी-सी उम्र होती है, और कभी जिंदगी-भर की लबी।

ऐसा किसी क लिए समय-सापेक्ष भी होता है, और कभी कठिन समय-परीक्षा मे उत्तीर्ण होकर उत्कृष्ट शिखर तक पहुँचने की मिसाल कायम करना भी। छोटे समय तक चलने वाली 'प्रेम कहानी' मात्र और मात्र किसी से भी दैहिक-तुष्टि-पूर्ति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होती। यह जरूरत के मुताबिक होती है, इसीलिए वह अपनी प्रेमकथा चद सफो तक ही दर्ज करा पाती है।

यौन वैज्ञानिक, मानस चिकित्सक, डॉ० द्वारका प्रसाद नर नारी' जैसी पत्रिकाएँ निकालते रहे हैं। इसी विषय पर उन्होंने कई उपन्यास भी लिखे हैं। यहाँ थोडे म उनके 'जरूरत' उपन्यास की चर्चा कर लेने से स्थिति अधिक स्पष्ट हो सकगी।

उपन्यास-नायिका शमा, अपने पिता के मित्र, जिसे वह अकल कहती है पर ही मुग्ध रहती है। बार-बार अकल के बाहुपाश मे बँधती है। आनन्द के अतिरेक म हिलोर मारता हे। जीवनपर्यंत साथ निभाने के वायदे करती है। घटनाक्रम आगे बढता है। शमा का विवाह समवयस्क समर्थ युवक के साथ हो जाता है। अब नवीन परिस्थितियों मे शमा की 'जरूरत' स्थानान्तरित (ड्रिफ्ट) हो गई है। अकल नहीं, अब उसकी 'जरूरत' पति है। अस्तु, यह 'प्यार की छोटी उम्र' की ओर इशारा करती हे।

सग्रह की कहानियाँ इन्हीं बिन्दुओं क आसपास घूमती हैं, किन्तु बहुत विविधता लिये हुए। इसलिए इन कथाओं मे एकरसता नहीं है।

विषय-प्रवर्तन मे बहुत कह लेने के उपरान्त, लगता है कि बहुत-कुछ कहने से छूट गया हे। इसक पीछे कारण है विषय की व्यापकता। विश्वास है कि छोड दी या छूट की बातो को सुधी पाठकगण इन कहानियो के माध्यम से स्वय जान लेगे। हमारा मन्तव्य किसी स्थापना का दावा करना नहीं है।

यह भी सही है कि ऊपर दिए गए दृष्टातो, उद्धरणो के द्वारा किसी प्रामाणिक-सत्य की कसौटी का दावा भी पेश नहीं किया गया है। इन्हे सत्य न भी माने, तो भी यह सब जीवन के बहुत बडे सत्यो को उजागर करते हैं तथा विषय विस्तार की भावभूमि मे सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

जीवन के विविध पक्षो को समझने, विश्लेषित करने के लिए तमाम तरह का साहित्य कारगर भूमिका का निर्वाह करता है। जिस विषय को हमने यहाँ कहानियों के माध्यम से स्पर्श करने की चेष्टा की है निश्चित रूप से वह मानव-समाज का अति महत्त्वपूर्ण अग है। इसका न तो उपेक्षा की जा सकती है और न ही इसे कम करके आँका जा सकता हे। इसमे सशय की गुजाइश नहीं है।

सप्रति सामाजिक दृष्टि से वर्जित विषयक ये कहानियाँ यथार्थ-जीवन के किन्हीं अपरिहार्य मोडो पर आकर बरबस स्वाभाविकता ग्रहण कर लेती हैं इसी मे ये कहानियाँ थोडा चौंकाती हैं विचलित करती हैं, साथ ही जिज्ञासा-भाव जगाती है। हमारा विचार है ये कहानियाँ बुद्धिजीवियो मे लेकर सामान्य पाठक को रुचिकर तो लगेगी ही उन्हे बार-बार सोचने-पढने तथा अपने तईं विश्लेषण करने को भी विवश करगी।

शायद ऐसी ही सोच के तहत लबे अर्से से ऐसी कहानियो को मैं सहेजता रहा। श्री हसन जमाल श्री रतन श्रीवास्तव श्री अशोक गुप्ता के प्रति आभारी हूँ, जिन्होने इस कार्य म रुचि दर्शाई। श्रीमती वत्सला पाण्डेय के लिए क्या कहूँ! उन्होने पूरा समय निकालकर इस भूमिका को पूर्ण स्वरूप प्रदान करने म सहयोग दिया।

मेरे जिन आदरणीय लेखको ने अपनी कहानियाँ इस सग्रह मे शामिल करने की अनुमति दी कहना न होगा कि उनके सहयोग के अभाव मे यह योजना समग्रतापूर्वक अपने लक्ष्य तक न पहुँच पाती। उन सब का आभार कैसे व्यक्त किया जाए, नहीं जानता। हाँ इतना अवश्य है कि एसे लेखकों, पाठको तथा सहयोगियों की अनुकूल उत्साहवर्धक प्रतिक्रिया मिली तो में प्रकाशक महोदय स इसका दूसरा भाग प्रकाशित करने का अनुरोध भी करूँगा।

शुभम्। सर्व को नमन।

—हरदर्शन सहगल

5 ई 9 'सवाद'
डुप्लैक्स कॉलोनी बीकानेर-334003 (राजस्थान)

डेड लाइन

प्रेम प्रकाश

सतपाल, एस० पी० आनन्द, सत्ती या पाली—मरनवाले के ही नाम थे। जब मैं इस घर मे ब्याहकर आई थी तो सामाजिक सबध मे वह मेरा देवर था—आँगन मे गेद से खेलनेवाला, छोटी-छोटी बात पर रूठनेवाला और जो भी सब्जी बनती, न खानेवाला लेकिन भावनात्मक सबध स वह मरा बटा था, भाइ और प्रेमी भी।

बी० ए० करके एक साल की बेकारी के बाद सत्ती को नौकरी मिल और कुडमाई हुए अभी पूरा साल भी नहीं बीता था कि गले मे हो रही खारिश का नाम कैसर बन गया जिसकी रिपोर्ट देते हुए रिश्तदारी म मामा लगत डॉ० पुरी की पूरी चाँद पर पसीने की बूँदे चमकने लगी थी। उन्हाने मेरे और आनन्द साहिब के कधे पर हाथ रखकर कहा था "बेटा, छह महीने बाद यह अपना नहीं रहेगा। इलाज का कोई लाभ नहीं। यदि पैसे खर्चना ही चाहते हो तो कहीं धर्मार्थ लगा दो। मात्र नाम के लिए दवा मे देता रहूँगा।" लेकिन डॉक्टर पुरी को क्या मालूम कि बिना कोई चारा किए जीना कितना मुश्किल होता है। शाम के समय मैने सत्रह हजार रुपए वाली साझे खाते की पासबुक उसके वीर (भाई) के आगे रखकर कहा "यह पैसा हम किसके लिए बचाएँगे?"

सत्ती की रिपोर्ट लाकर हम पिताजी के कमरे म दरवाजे के पास खडे थे, कागज थामे। वह हम इस तरह देख रह थ, मानो हम शॉपिंग करके लौटे हा और उनके लिए फल लाए हो। हम उनकी वह नजर सहन नहीं कर सके। जल्दी ही अपने कमरे मे चले गए।

सत्ती अभी दफ्तर से लौटा नहीं था। उसे कैसे बताएँगे? यह सवाल आनद साहिब ने मुझसे किया और फिर खुद ही आँखो पर हाथ धरकर रो दिए। मेरे भी आँसू निकल आए, लकिन मैंन जल्दी हो आँख पाछकर पति को दिलासा दिया कि यह काम मैं करूँगी। मुझे लगा कि सास के बाद यह जिम्मेदारी मेरी हो है। मैं इस घर की माँ हूँ। सोचा यदि मैं भी रा पडी तो फिर सत्ती रोएगा, पिताजी रोएँगे, यह घर कैसे चलेगा?

रात आनद साहिब सैर करने चले गए। पिताजी खा-पीकर सो गए तो मैं सत्ती के साथ कैंसर की बात करने लगी। हम रागिया की पहेलियाँ-सी बूझते रहे। आखिर हम उस जगह पहुँच गए, जहाँ रोगी बाकी बचे जीवन को सुखी बनाने के लिए सघर्ष करते हैं और बिना दुख के ही मौत कबूल कर लेते है। और फिर मैंने डॉक्टर पुरी का फैसला शका बनाकर कह डाला।

सुनकर वह डरा नही, लेकिन उसके चेहरे की मुस्कान लुप्त हो गई। बोला "मैं खुद ही डॉक्टर पुरी से पूछूँगा।" मैंने रिपार्ट उसके आगे रख दी। उस पर कैंसर तो नहीं लिखा हुआ था डॉक्टर की भाषा मे कुछ और ही था। उसने एक बार देखकर रिपोर्ट उसी तरह तह करके टिका दी। एक बार खाँसा और उठकर अपने कमर मे चला गया।

मै खडी देखती रही। वह दो-तीन मिनट अपनी मेज का सामान इधर-उधर करता रहा और फिर बाहर बरामदे मे आकर रुक गया। सामने गेट के पास क्यारी मे लगे फूला की ओर देखता रहा। मुझे लगा कि लो, यह मौत का चक्कर शुरू हो गया।

जब मैं इस घर मे ब्याहकर आई थी तो वह गोद मे खेलता बच्चा था। अबाला वाली मौसी ने इसे पकडकर मरी गोद मे ला बिठाया था। यह काई परपरा थी या प्रार्थना कि परमात्मा इस गोद मे लडके बिठाए, लेकिन मुझे लगा था कि जैसे याद दिलाया गया हो कि तुम इसकी माँ भी हो।

अपन घर मे अपने छोटे भाई सुभाष को स्कूल भेजने के लिए मैं ही तैयार किया करती थी यहाँ आकर सत्ती को करने लगी।

मेरी हमशा कोशिश होती थी कि सत्ती अकेला न रहे। हम ताश कैरम

व अन्य खेल खेलते या फिल्म देखने चल पडते। ताश वह अगूठे और उँगली को थूक लगाकर बाँटता था। रोटी खाता तो मेरी कटोरी म स बुर्की लगा लता। शर्त लगाता तो मेरे हाथ पर हाथ मारता, मैं डर जाती।

एक दिन डॉ० पुरी के पास गई। वे बोले "कैंसर छूत का रोग नहीं है, लेकिन परहेज म क्या हर्ज है।"

मैं ऊपर से हँस देती, लेकिन अदर से डरती, पर कभी-कभी मेरा प्यार इतना जोर मारता कि मैं सब-कुछ भूल जाती।

एक दिन हम इग्लिश मूवी दखकर आए। चौबारे की सीढियाँ चढते सत्ती ने फिल्मी स्टाइल म सहारे के लिए अपना हाथ पेश कर दिया। मने भी फिल्मी अदाज़ म सहारा लेकर अतिम स्टेप पर जाकर उसका हाथ चूम लिया। वह अजीब-सी नजरो से मुझे देखने लगा। बेपरवाह-सी कुर्सी पर बैठकर अलमारी के शीशे म उसके चेहरे के बदलते रग देखती रही। वह सुर्ख होकर पीला पडने लगा था।

"क्या बात है, उदास क्यो हो ?" मैंने उसके कधे पर हाथ रखकर प्यार से पूछा तो वह मेरी गोदी म सिर देकर रो पडा। मैंने उसके सिर और पीठ पर हाथ फेरते हुए उसे दोनो बाँहो म कस लिया "तुम तो मेरी जान हो, प्यारी प्यारी।"

उसने नि श्वास छोडकर अग्रजी म कहा "मै जिंदगी खो चुका हूँ।"

उसकी इतनी बात से मेरी जान निकल गई। मौत के बारे मे यह पहली बात थी जो उसने कही थी, खुद अपने मुँह से। मैंने उसका माथा चूमते हुए अग्रेजी मे ही कहा, "हमारा मर्वस्व तुम्ह अर्पित है।"

डर के कारण सत्ती की नीद उड गई। वह कितनी ही रात देर तक जागता रहा। यही बात हमारी नींद उडाने के लिए काफी थी।

एक रात डेढेक बजे आवाज आई जैसे सत्ती ने पानी माँगा हो। मैने जल्दी म बीच का दरवाजा खोलकर देखा। सत्ती तकिय म मुँह दिए औंधा पडा था। उसके शरीर का बडा हिस्सा रजाई से बाहर था। इतनी ठड म भी प्यास लग सकती है। न जाने अदर क्या तूफान मच रहा होगा। यही सोचकर मैं उसके पास पहुँची। सामने बैठकर सिर सहलाते हुए पूछा, "क्या बात है नींद नहीं आती ?"

"नहीं, दा घटे से जाग रहा हूँ।"

मैंने उसे काम्पोज़ दी जो अब आनन्द साहिब को और कभी-कभार

किया। शायद कुछ और भी कहा था, लेकिन मने वह सुना नहीं। मेरे शरीर मे से लहर-सी काँपती निकल गई थी।

मैं सामने कुर्सी पर बैठ गई। उसे देखती रही। उसने दूसरा गिलास पास रखकर उसमे भी उडेल दी। न जाने उसे मेरे दिल की बात कैसे मालूम हुई! आदमी ज्यो-ज्यो मौत के पास होता जाता है, उसकी छठी ज्ञानेन्द्रिय तेज होती जाती है शायद।

मेरे न-न करते भी उसने मुझे बाहो म कसकर दवा की तरह वह तीखी कडवी चीज पिला दी। जीवन मे दो बार पहले भी मने यह पी थी। एक बार क्वाँरी थी मैं, तब—सहेली के घर, तब तो कुछ पता ही नहीं चला था। और दूसरी बार आनद साहिब के साथ मिलकर काफी पी ली थी। अच्छी-खासी चढ गई थी। बहुत कडवे-मीठे अनुभव हुए थे, लेकिन सुबह उठकर मेरी तबीयत इतनी खराब रही थी कि फिर कभी मुँह लगाने से मे डरती ही रही। लेकिन उस दिन प्यारे सत्ती का कहना न ठुकरा सकी। यूँ लगता था कि मैं उसकी कोई भी बात ठुकराने योग्य नहीं रही। वह कहकर तो देखे!

मैं रोटी परोसकर लाई तो उसके हाथ बुर्की तोडकर मुँह मे डालते गलतियाँ कर रहे थे। दरअसल बुर्की तोडते हुए, सब्जी लगाते भी, उसकी नजर मुझ पर रहती थी। उसने खाना बद कर दिया। चीखती आवाज मे *भाभीजी* कहकर मेज पर बाँहो म मुँह टिकाकर बैठ गया।

मैंने प्यार से कहा, "सत्ती, उठ। चल, लेट जा। सो जा।"

उसने चेहरा ऊपर उठाया तो लाल सुर्ख हो रहा था। आँखे भी लाल थीं। मैं समझ गई कि वह क्या चाहता था। मेरा दिमाग सुन्न होता जाता था। मैं सोच रही थी कि हिंदू धर्म उस आत्मा के लिए क्या कहता है, जो नारी-प्रेम के लिए भटकती शरीर छोड जाए।

मै उसे सहारा देकर उसकी चारपाई तक ले गई। मुझे लगा, मेरे पैर भी ठीक से नहीं टिक रहे थे।

रजाई उस पर ठीक करके मैं हटने लगी तो उसने मेरी साडी पकड ली। बोला, "भाभीजी, मुझे एक बार निमल से मिला दो।"

मेरे अदर से हूक निकल गई—"मैं कहाँ से लाऊँ मेरे अजीज तेरे लिए निर्मल? वह तो एक बार तुझे देखने भी नहीं आई।"

विवश दिल पर बोझ लेकर मैं उसीकी चारपाई पर बैठ गई। उसे चूमा और प्यार से उसका सिर उठाकर अपनी गोद मे ले लिया। उसने बेवसी म

बाँहे फैलाईं और मुझे बाँहो की सख्त पकड म ले लिया, जैसे डरा बच्चा अपनी माँ स चिपट जाता है।

एक बार तो मैं जड हो गई। फिर न उसे भान रहा, न मुझे कि हम कौन थे। म उसकी भाभी थी, बहन थी माँ थी या पत्नी।

मेरे सामने उसका चमकता माथा, घनी भवा और पतले हाठो वाला चेहरा था, या चेहरा भी नहीं, केवल शरीर था अग्नि म तपे लाल लोहे-सा या केवल आत्मा थी निश्छल, निर्विकार और न जाने क्या-क्या जिस पर कोई आवरण नहा था। आत्माएँ नगी थीं, कपडे तो शरीरो पर थे बस, हवन हो रहा था। आहुति पड रही थी। हर आहुति पर अग्नि प्रचड होती थी। स्वाहा-स्वाहा की ध्वनि हो रही थी।

शातिपाठ हुआ तो वह थका चूर-सा सोने लगा। मैं उसके साथ लेटी उसके मासूम चेहरे की ओर देखती रही। मुझे तब याद आया—उसके नक्श उस लडके से मिलते-जुलते थे, जिसे एक बार देखने के लिए मे कितनी देर मुँडेर पर खडी रहती थी। मैंने उठकर उसे भवो के बीच चूमा आर रजाई देकर अपनी चारपाई पर आ पडी। सोचती रही—हमने क्या किया है ? क्या हम धर्म की नजर म पथभ्रष्ट हो गए है ? नरक के भागी बन गए है ? मुझे लगा—मैंने धर्मग्रथो मे जो कुछ पढा वह झूठ है। सच वही है, जो परिस्थितियाँ हमे देती है जिसमे ब्रह्महत्या भी पाप नहीं हो सकती।

सुबह इतवार था। आनन्द साहिब सात बजे ही आ गए। शायद वे हर इतवार के हवन करने के नियम को भग नही करना चाहत थे। इसके साथ उनका कोई वहम जुडा हागा। मैने सत्ती को जगाया कि उठकर नहा ले।

हवनकुड के इर्द-गिर्द आनद साहिब मेरे बाएँ बैठे थे, सत्ती दाएँ, सामने पिताजी बैठे थे—पिलर का सहारा लेकर। हवनकुड के इर्द-गिर्द चारो दिशाओ म पानी डालकर शरीर के सभी अगो के लिए शक्ति की प्रार्थना करके मैंने अजुरी मे से पानी के कतरे ऊपर फकने के साथ-साथ सत्ता पर भी फेंक दिए। तभी मुझे लगा—हम इतनी उम्मीदे बाँधत हैं शारीरिक अगो की शक्ति के लिए, सौ साल जीने के लिए। सत्ती के तो अब तीस दिन भी बाकी नहीं रहे।

दूसरे कमरे मे जाकर मैंने आनद साहिब से पूछा ''कुरुक्षेत्र वाले वैद्य ने क्या बताया ?''

''क्या बताता। बोला—बीमारी पक चुकी है दवा लेनी हो तो ले जाओ

वरना न सही। मैं पद्रह दिन के लिए ले आया हूँ।"

बरामदे म हवनकुड म से ज्वाला प्रज्वलित हो रही थी। पिताजी पिलर के सहारे बैठे थे। उनकी नजर कभी सत्ती की ओर उठती, कभी अग्नि को ओर तो कभी आसमान की तरफ।

मेरी गहरी साँस उभरी तो आनद साहिब ने पूछा, "क्या न पी० जी० आई० चडीगढ ले चल। एक नया इलाज होने लगा है वहाँ। रान पर लकीर डालकर दवाई पेट म कर देते हैं, सप्ताह-भर उसका असर देखते हैं, साथ ही बिजली भी लगाते हैं। कितने रुपए बच हैं?"

"बहुत हैं, जैसी आपकी इच्छा।" कहकर मै रसोई म चली गई। सोचती रही—मालूम नहीं, किसे कहाँ-कहाँ की दवा खाकर कहाँ, किस बिस्तर पर मरना है। चडीगढ क्या बनेगा? चलो, हरज ही क्या है?

शाम के समय सत्ती दिनभर घूमकर आया तो उसका दिल टिकता नहीं था। वह सकेत करके मुझे चौबारे मे ल गया। हेरफेर करके बात करने लगा। मे समझ गई। उसका दिल पीने को करता था, लेकिन वीरजी का डर था। मैं उस सब-कुछ वहीं पकडा आई।

आनद साहिब साबूदाना लने बाजार तक गए तो सत्ती फौरन नीचे उतर आया। रसोई मे मेरे पीछे खडा हो गया। उसकी साँस बहुत तेज चल रही थी। मैंने लोटकर दखा उसकी आँखे भी सुर्ख थीं। उसने अग्रेजी मे कहा "प्लीज, किस मी।"

मैंने उसके माथे से बाल हटाए और कसते हुए उसे चूम लिया। ओर कुछ देर उसे उसी तरह सीने स सटाकर खडी रही। तभी मुझे महसूस हुआ कि यहीं से पाप शुरू होता है, जब मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए कुछ करता है। मे एकदम पीछे हट गई। लेकिन वह नहीं हट रहा था। मैने समझाया उसे आनद साहिब का डर दिया व तसल्ली दी तो वह बरामदे मे जाकर बैठ गया। इसी कारण मैंन सफाई और बर्तनो के लिए काम करने आती लडकी हटा दी थी। इसी डर से मैं उसे ताया की बहू सतोष के पास नहीं जाने देती।

खाना खाकर आनन्द साहिब सैर करने निकले तो सत्ती फिर बच्चो की तरह जिद करने लगा। मेरे रोकते-रोकते उसने बेडरूम की बत्ती बुझा दी।

वह शात हाकर सुस्ताने लगा तो मुझे लगा मानो मरा मरनवाला बच्चा मरे साथ लेटा है। मे उछलते दूधवाली छाती उसके मुँह मे देती हूँ लेकिन उसमे चूँघने की शक्ति नहीं मुझे होश आया तो मैं उसी तरह सत्ती को लिये

लेटी थी, जैसे माँ अपने दूध-पीते बच्चे को दूध पिलाती सो चली हो और फिर बच्चा भी।

उठकर मैं तेजी से बाथरूम गई। ब्रश लेकर कुल्ला किया। मेरे अंदर डर बैठ गया। शुरू-शुरू में मैं अपने होंठ बचाने के लिए मुँह पर कपड़ा रखती थी लेकिन कुछ उसके जोर डालने पर व कुछ अपनी बेबसी में मैं यह भूल ही बैठी कि वह कैंसर का रोगी था।

दोपहर में जल्दी ही डॉ० पुरी के पास गई। उन्हें नई आई नौकरानी के साथ सत्ती की बात जोड़कर बताई तो वे बोले "कोई बात नहीं। नो इन्फेक्शन।" लेकिन मेरा वहम दूर न हुआ।

चंडीगढ़ में हमारे कई संबंधी हैं। लेकिन हम किसी के यहाँ नहीं गए। रोगी के साथ जाना क्या भला लगता? अस्पताल के पास पंद्रह सेक्टर में एक कमरा-रसोई किराए पर लेकर रहने लगे। अस्पताल से फारिग होकर हम देवर-भाभी पकाते खाते, ताश खेलते शाम को सैर के लिए निकल जाते या शॉपिंग सेंटरों में लोगों की भीड़ में सत्ती का मन लगता था। वह जो भी पसंद करता मैं खरीद देती। कई कॉस्मेटिक्स वह मेरे लिए भी पसंद करता मैं वह भी खरीद लेती। एक दिन उसने एक स्कार्फ पसंद किया। इतने गहरे लाल नीले पीले रंगों का वह स्कार्फ मुझे क्या अच्छा लगता भला लेकिन सत्ती की ख्वाहिश थी या जिद मुझे दूकान से वही बाँधकर उसके साथ चलते हुए घर तक आना पड़ा। उसी को बाँधकर बिस्तर पर लेटना पड़ा।

सरदी जा चुकी थी तो भी वह चाहता था कि रात को दरवाजे-खिड़कियाँ बंद रहें। नारी को देखने की उसकी भूख मिटती नहीं थी। कभी-कभार वह मुझे देखता सोचता और मेरी छातियों में नाक घुसाकर रोने लग जाता।

अस्पताल में मुझसे कोई पूछता 'क्यों बीबी, यह तेरा भाई है?' मैं *हाँ* कह देती। यदि कोई पूछता 'तेरा बेटा है?' मैं तब भी *हाँ* कह देती। यदि कोई पूछती, 'यह तेरा क्या लगता है?' मैं चुप ही रहती। क्या बताती? चंडीगढ़ में वह मेरा पति बनकर रह रहा था मेरे शरीर का स्वामी।

अब औरत उसके लिए कोई भेद कोई रहस्य नहीं—एक रुटीन बन गई थी। उसका अपना शरीर दिनोंदिन कमजोर होने लगा था—बिजली के इलाज के कारण या उसकी मानसिक अवस्था के कारण कुछ निश्चित कहा नहीं जा सकता। उसकी जिद व माँग भी कम होने लगी थी। खाने-पहनने से भी

उसका जी उचाट होने लगा था। वह कभी शराब पीता कभी समाधियाँ लगाता, तो कभी गीता के श्लोक उच्च स्वर म पढता रहता—नैन छिंदन्ति शस्त्राणि। मैं सोचती कि बार-बार उसका यह श्लोक-पाठ किसी को कैसे सहारा दे सकता है। आत्मा के अमर-अजर होने से उसे क्या फर्क पडता है।

पी० जी० आई० का कोर्स पूरा करके हम घर लौटे तो उसके लिए दलिया खाना भी मुहाल हो गया था। कभी-कभी हालत एकदम बिगड जाती। साँस लेना मुश्किल हो जाता। वह सुबह से शाम तक बरामदे मे अपनी खाट पर लेटा गेट की ओर देखता रहता। कभी-कभी अचानक डर जाता। उसकी बाँह, टाँग या सारा शरीर काँप जाता जैसे बच्चे सपना देखकर डर जाते है।

शाम को चाय के समय पिताजी ने सत्ती को बुलाया। वह सामने कुर्सी पर आ बैठा। पिताजी देखते रहे। फिर कुछ फुसफुसाकर हाथ जोडकर उन्होने आँख मींच लीं। मैंने सत्ती को इशारा करके उठा दिया।

एक दिन बरामदे मे सत्ती को सिगरेट पीते हुए छोडकर म रसोई मे गई तो चीख सुनाई दी। मै दौडकर आई, वह आरामकुर्सी से गिर पडा था। सिगरेट फर्श पर पडी सुलग रही थी। तनिक सहारे से वह उठ बैठा, बोला, ''भाभीजी, मेरी साँस रुकने लगी थी।''

मै उसके गले म देसी घी मलती रही।

आखिर *डेड लाइन* भी आ गई। वह आखिरी रात थी। मुझे नींद नही आ रही थी। आनद साहिब गायत्री-पाठ कर रहे थे, लेकिन सत्ती सो रहा था। म इसी दौरान दो बार उसे देख चुकी थी।

अचानक उसकी कठिन साँसो की आवाज रुक गई। कुछ क्षण म साँस रोककर लेटी रही। फिर उठकर उसके कमरे म गइ। धीमे-से चादर का पल्लू उठाकर देखा—उसकी साँस चल रही थी, लेकिन उसका चेहरा पीला हो गया था। झुककर मै उसके चेहरे को निहारती रही चेहरा जो कभी लाल गुलाब था।

वह रात निकल गई—डॉ० पुरी की डेड लाइन।

सुबह उठकर आनद साहिब ने फिर हवन किया। पिताजी के हुक्म के अनुसार कितना सारा अनाज व वस्त्र सत्ती के हाथ से दान करवाया। तीसरे पहर सत्ती आरामकुर्सी पर बैठा-बैठा गिर पडा। आनद साहिब घर पर ही थे। हम जल्दी मे उसे उठाकर डॉ० पुरी के क्लीनिक मे ले गए। उन्होने न जाने कैसे व क्या किया कि साँस ठीक हो गई। फिर दस ही दिन म सेहतमद होकर

उसने डॉ० पुरी को भी हैरान कर दिया। वह घोड़े जैसा तगड़ा हो गया। सब कुछ खाता-पीता और आवारागर्दी करता। फिर वह वही सब काम करने लगा, जो मुझे पसंद नहीं था, जिनके कारण मुझे उस पर और खुद पर शर्म आती। अक्सर वह संतोष के पास उसके चौबारे में बैठा रहता। तायाजी के लफंगे लड़कों के साथ पीता व लचर-सी हरकतें करता। धक्के से ही मेरे पर्स में से पैसे निकालकर ले जाता। यहाँ तक कि कभी मैं उसे प्यार करती तो उसकी नजर में वह प्यार ही न दिखाई देता। लगता जैसे कोई बदमाश देखता हो, जैसे मुझे पकड़ना उसका अधिकार हो जैसे किसी से भी कोई चीज उधार ले लेना या माँग लेना उसका हक बन गया। वह दूसरा के सिर पर पलनेवाला बदमाश बन गया था जिसकी बदमाशी का कारण शक्ति नहीं, कैंसर था। कैंसर उसे मार रहा था और कैंसर द्वारा वह हमें मार रहा था।

डेढ़ेक माह बाद उसकी तबीयत फिर बिगड़ने लगी। थूक में खून जैसा कुछ निकलता तो वह दहल जाता। आनंद साहिब घबरा जाते। मैंने फिर दवाइयों पर जोर दिया।

एक शाम थके-हारे आनंद साहिब सोचते हुए बोले "न जाने और कितनी देर यह नरक ?"

"परमात्मा का नाम लो सब दुख कट जाएँगे।" उनकी बात का उत्तर मैंने दे तो दिया, लेकिन यह मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि वह किसके नरक की बात करते थे सत्ती के, पिताजी के या अपने मन में आया कि कह दूँ, जो कुछ तुम भोग रहे हो वह नरक है तो जो मैं भोग रही हूँ, वह क्या है ?

सत्ती दिन में न जाने कहाँ घूमता रहता लेकिन अँधेरा घिरते ही घर लौट आता। वह डरा-सा होता और रात को चारपाई पर पड़ा धर्मग्रंथ पढ़ता रहता। उसका चेहरा सदा गेट की ओर रहता था। कभी-कभी उसके चेहरे पर इतनी शांति होती कि भक्तों के चेहरा पर क्या होती होगी, लेकिन कभी इतनी व्याकुलता होती कि लगता जैसे वह बहुत जल्दी में है मानो वह किसी की प्रतीक्षा में हो मानो कोई प्लेटफार्म पर बैठा गाड़ी के इंतजार में हो या मानो गाड़ी निकल गई हो और प्लेटफार्म सूना पड़ा हो।

मरने से एक रात पहले न जाने कैसे उसे मालूम हो गया था। उसने संकेत से मुझे अपने पलँग पर बुलाया। बीचवाले दरवाजे की बोल्ट लगाकर मैं उसके पास बैठ गई। फिर उसके आग्रह पर साथ लेट गई। वह मेरी ओर

देखता रहा, देखता ही रहा। फिर उसकी बुझी-सी आँखो मे आँसू आ गए। एकाएक मैंने उसका चेहरा अपनी छाती से लगा लिया "क्या बात है मेरे बच्चे ?"

उसने आँख मींच लीं, माना ध्यान म चला गया हो।

दूसरी सुबह उसने बेड-टी नहीं पी। नहाकर अगरबत्ती जलाई और पाठ करने बैठ गया। अभी प्रारभिक मत्र ही पढा होगा कि उसक हाथ से पुस्तक गिर गई और वह फर्श पर टेढा हो गया।

मैंने रसोई मे से भागते हुए जाकर उसे सँभाला तो मेरी चीख निकल गई। आनद साहिब काँपते हुए भागे आए, लेकिन वह घटित हो चुका था, जिसकी प्रतीक्षा सत्ती को थी आनद साहिब को और मुझे भी। आज इस घटना को हुए कोई एक साल बीत गया, लेकिन मुझे इस सवाल का जवाब नहीं मिल रहा कि वह मेरा कौन था ?

अनुवादक फूलचद मानव

मुरारी फूलवाला और मीमसाब

कृष्ण बलदेव वैद

उस अमीर गली के मोड पर खडे नीम के एक भरे-पूरे पेड के नीचे मुरारी फूलवाला पिछले कुछ महीना से सुबह-शाम अड्डा जमा रहा था। एक शाम अचानक नमूदार हो गया था, मानो फूला-समेत उसी नीम के पेड के नावे उतर आया हो। उसके आ जाने से गली मे बहार-सी आ गई थी। सुबह-शाम नीम के नीचे उसके फूल एक रग-बिरगे अलाव-से दिखाई देते। दिनभर उनकी महक गली की हवा मे बसी रहती। लोग फूल भी खरीदते मुरारी फूलवाले से हँसी-मजाक भी करते। महिलाआ और बच्चो को उससे खास प्यार था। वह भी उन्हे हँसाने के लिए तरह-तरह की अदाकारियाँ करता अपने ठेठ पूरबी लहजे म मुँह बना-बनाकर बाते करता, और कभा-कभी अचानक कोई ऐसी रगीन तान छेड देता कि महिलाएँ शरमा जातीं बच्चे उसकी नकल उतारने लगते ओर वह पुकार उठता, 'मीम साब ईह छोटे साहब लोग हमरो मजाक क्या उडावत है ? इनकू डाँटिए।''

मुरारी फूलवाले की आँख हमेशा मस्त रहती थीं होठ लाल मुस्कराहट मे रचे हुए। उसके रग म एक सलोनी चमक थी आवाज म सुर्ख गर्माहट। उसके कपडे हमेशा साफ और सफेद होते और फूल एकदम ताजा और तीखे। अपने फूला के बीचोबीच वह खुद एक हँसते-खेलते फूल-सा दिखाई देता।

किसी को कुछ मालूम नहीं था कि वह फूल लाता कहाँ से था। अगर कोई महिला पूछ लेती तो वह ऐसी अदा से मुस्करा देता जैसे कह रहा हो 'मीमसाब, का फरक पडत है। आप ईह चिंता काहे को करत हे कि फूल किस बगिया के हे। वइसे हम सच बोलैं तो ईह फूल किसी बगिया के नाही ईह तो सीधे आकाश से आवत हें, समझीं मीमसाब ?'

अगर प्रश्न करनेवाली महिला सुदर होती तो मुरारी की मुस्कराहट ओर भी मोहिनी हो खिलती, उसके पान-पीले दाँत और भी प्यारे हो जाते, उसकी आँखो की मस्ती और भी मादक हो उठती, लेकिन उसके मुँह से कोई जवाब फिर भी न निकलता। अगर कोई महिला जिद पकड लेती तो मुरारी हाथ जोडकर खडा हो जाता, जस कह रहा हो 'मीम साब, जान ले लो, ईह मत पूछो कि फूल कहाँ से आवत हे। ईह तो हम किसी को नाहीं बतावेगे।'

उसकी रहस्यभरी खामाशी, मुस्कराहट और उसके फूला के सस्ते दामा के कारण कुछ महिलाआ ने शक करना शुरू कर दिया था कि उसके फूल चोरी के होगे, इसीलिए वह बताता नही कि कहाँ से लाता हे। उनका यह शक उनकी आँखो और मुस्कराहटो मे टिमटिमाता रहता। इस शक के कारण मुरारी और उसके फूला का आकर्षण और ज्यादा हो गया था। चोरी क फूलो का छूते समय महिलाओ को एक सुदर सनसनी-सी महसूस होती। उन्हे लगता जैसे वे कोई छोटा-सा कोई भोला-सा पाप ओर पुण्य एक-साथ कर रही हा। वे मन ही मन पार्थना करता कि मुरारी फूलवाले की चोरी कभी न पकडी जाए, आँखो ही आँखो म मुरारी को आश्वासन देती रहतीं कि उसका भेद वे कभी नहीं खोलेगी, मुरारी आँखा ही आँखो मे उनके आश्वासन स्वीकार करता रहता और उन्ह यह भी सुझाता रहता कि उसक फूल किसी बाग मे नही उगते, सीधे आकाश से उतरते थे।

या तो मुरारी को सभी महिलाएँ अच्छी लगती थीं, लेकिन डाक्टरनी मीमसाब से उसे खास लगाव हो गया था। एक तो उसकी बोहनी मे बरकत थी, दूसरे उसकी आवाज मे शहद था, और तीसरे उसके शरीर मे आभा थी। वह हर शाम फूल खरीदने आती थी और सयोग से ऐसे वक्त आती थी जब कोई और ग्राहक नहीं होता था। मुरारी अक्सर याद करता है कि पहली शाम उसन सभी फूलो को ठीक तरह से सजाया भी नहीं था कि एक गोरी परी उसके सामने आ खडी हुई थी। हमरो तो भइया उसी क्षण नक्सा ही बदल गया था—ऊपर का श्वास ऊपर नीचे का नीचे—अईसी परी तो हमने सपने म भी

नाहीं देखी। परी न पूछा था, 'फूलवाले क्या नाम है तुम्हारा?' उसकी आवाज़ सुनकर मुरारी के तो हाथ-पाँव फूल गए थे। 'अईसी आवाज़ तो भइया हमारे बाप ने भी शायद नहीं सुनी हो। अइसी मिठास तो किसी कोयिल की आवाज़ मे भी न होवै।' मुरारी ने ज्वाब दिया था 'अरे मीमसाब गरीब का कइसा नाम और का धाम।' इस पर वह महिला हँसने लगी थी और मुरारी फूलवाले को लगा था जैसे उससे कोई भारी भूल हो गई हो। 'भइया हमरा तो खून ही खुश्क होई गयो। ऐसी हँसी तो शिव शम्भु किसी दुश्मन को भी न दिखावैं। उसके दाँतन के सामने तो हमरे सारे फूल साले फीके।' उधर वह महिला हँसती भी जा रही थी और झुककर गुलाब और ग्लैडियोला भी चुन रही थी। 'हम तो भइया अधे होई गये उस परी का रंग-रूप और यौवन देख-देख। अइसा सरीर तो इंदरसभा मे भी कहाँ होगा।' जब उस महिला ने दाम पूछे तो मुरारी फूलवाले ने लपककर उसके पाँव पकड लिये। उस महिला ने झट पाँव पीछे हटा लिये और हँसते-हँसते डाँट दिया 'अरे पगले यह क्या कर रहा है? अपना नाम बता और ठीक-ठीक दाम ले।' अब तो भइया हमरी दसा और खराब। धरती फट जाती तो हम तत्काल उसमे समाइ जाते। हमने हकलाते हुए कहा, 'अरे मीमसाब ईह तो साले दो कौडी के फूल भये मुरारी फूलवाले के तो आपके लिए प्राण भी हाजिर हैं।' इस पर बिगडने के बजाय वह मीमसाब इतनी हँसी थी कि मुरारी को मजा आ गया था। अरे भइया ऊ परी हँसती ना रही थी। उसका सारा सरीर हमरी ससुरी आँखन के सामने मोर-सरीखा थिरक रहा था। राम जाने धरती फट क्यो नहीं गई उसी क्षण।

उस शाम मुरारी बडी मुश्किल से उन मीमसाब से थोडे-से पैसे लेने पर राजी हुआ था। बार-बार यही कहता रहा था 'मीमसाब आप हमरा पहला ग्राहक। आपसे आज पैसे क्यूँ लेवैं हम?' परंतु भइया उस परी ने मान के नाहीं दीयो जबरदस्ती हमरे हाथन मे मुट्ठीभर नोट रख दीन। बडी मुश्किल से हमने सारे नोट उनके हाथ मे दाब दिए और केवल दो नोट निसानी-सरीखे रख लीन। भइया उन हाथन की कोमलता के सामने हमरे सारे फूल साले कागज के, सच्ची बात है।

तब से वह मीमसाब मुरारी फूलवाले की सबसे प्यारी ग्राहक बन गई थी। लगभग हर शाम फूल खरीदने आती और हर शाम मुरारी किसी न किसी तरीके से अपने चाव को व्यक्त कर देता और वह उसकी बातो पर हँसकर या उसे झूठ-मूठ डाँटकर और भी मुग्ध कर जाती। अरे भइया ऊ परी जब हमकू

पगला कहत है, हमरो चित्त प्रसन्न होई जात। मुरारी ने पता लगा लिया था कि वह मीमसाब डाक्टरनी थी, अपनी कोठी म ही डाक्टरी करती थी कुँआरी थी और उसके अड्डे से कुछ ही दूर एक बडी-सी कोठी मे एक काली-सी नौकरानी के साथ अकेली रहती थी। भइया का बतावैं, हमसे तो ऊ काली नौकरानी साली ही अच्छो कि उस परी की सगत म रहत है। काश कि हम साले फूलवाले न होकर ऊ काली नौकरानी होते।

जिस शाम डॉक्टरनी मीमसाब फूल लेने न आतीं, मुरारी फूलवाला मनहूस मुँह बनाकर बैठा रहता, ग्राहको से गलत-सलत बोलता रहता बच्चो पर बिगडता रहता, फूलो को सँवारने-सजाने के बजाय इधर-उधर झाँकता रहता। 'का बतावैं भइया, ऊ परी आज तीन दिन से नाही दिखो, हमरी तो सुध-बुध साली गायब। का करैं ? का होगा हमरा ? का जादू कर दीनो उसने ? हम तो बरबाद होई जाएँगे।'

इस लबी गैरहाजिरी के बाद जब डाक्टरनी मीमसाब मुरारी के अड्डे पर पहुँची तो वह दूसरी महिलाआ से घिरा हुआ था, उन्ह गलत-सलत दाम बता रहा था मुस्कराने के बजाय नाक-भौं चढा रहा था और महिलाएँ हैरान हो रही था कि उसे हो क्या गया था। तभी मुरारी की निगाह डाक्टरनी मीमसाब पर पडी और उसे चक्कर-सा आ गया। अरे भइया, हम तो बेहोस होते-होते बचे। किसी तरह सँभलकर उसने जल्दी-जल्दी सब महिलाआ को भुगताया और हाथ जोडकर अपनी प्यारी मीमसाब के सामने खडा हो गया। अरे का बतावैं भइया, ऊ परी उस समय साक्षात् देवी दिख रही थी और हम साले सायद राक्षस। हमरी अखियन मे पानी था और होठन पर कपन। हम अपराधी बने खडे थे और ऊ देवी दया की मूर्ति बनी हमकू निहार रही थी। आखिर हमने कहा, 'डॉक्टरनी मीमसाब हमसे का भूल भई कि इतने दिन बाद दरसन दीना ?' डाक्टरनी मीमसाब को मुरारी फूलवाले की एक्टिंग पर ऐसी हँसी आई कि उसे फूल चुनने के बहाने बैठ जाना पडा। आज तो उसने हमरी जान ही निकाल ली, भइया। अइसी हँसी, अइसी हँसी कि हम उनके सरीर की मोर-सरीखी थिरकन देख दग रह गइन। मुरारी ने कहा 'डॉक्टरनी मीम साब, आपकू हँसी आवत है और हमकू रोना। आपने तो मुरारी फूलवाले की कमाई ही बद कर दीनो। अरे भइया, हम अपने मन की बात साली उस देवी से कइसे कहते। कमाई साली का रोना रो दिया जबकि हम कहना चाहते थे कि डाक्टरनी मीमसाब, आप नहीं आवैंगी तो हम सब फूलवूल गदी नाली म फक

फाँसी ले लग। उधर डाक्टरनी मीमसाब ने धीरे-धीरे अपनी हँसी को थामा और बोली 'अरे पगले क्यों नाटक करता है? अच्छा यह तो बता तूने ये कैसे जान लिया कि हम डाक्टरनी हैं?' मुरारी ने शरम से लाल होते हुए कहा 'डॉक्टरनी मीमसाब वइसे ही जइसे आपने जान लिया कि हम पागल हैं।' इस पर डाक्टरनी मीमसाब की हँसी फिर छूट निकली और मुरारी गद्‌गद हो गया। 'ऊ देवी हमरे फूलन का चुन रही थी और हम उसके फूलन का देख रहे थे।' अरे भइया का बतावें अजीब समा था हमकू तो अइसा लग रहा था कि हमरा बेडा पार हुआ कि हुआ। फिर मुरारी ने धीमी आवाज में कहा, 'मीमसाब आप तो डाक्टरनी भईं हमरा पगलापन ठीक कर देवें तो हम सारा जीवन आप ही की सेवा करत रहिन।' यह सुनते ही डाक्टरनी मीमसाब कुछ सँभल गईं और कुछ लाल हो गइ। बोली, 'ज्यादा बात नहीं करते। पगला कहीं का। ले ये फूल ठीक कर दे।' अरे भइया हमने तो समझ लीनो कि ऊ परी अब हमसे कभी न बोलेगी। हमरा मन भया कि ऊ के पइयाँ पड जावें और रोना शुरू कर देवें, फिर सोचा कि इस पर तो ऊ परी और बिगड जावैगी सो हम चुप मार गए। डाक्टरनी मीमसाब मुरारी फूलवाले के पागलपन पर नाराज कम हुई थी खुश और हैरान ज्यादा—भोला बेचारा। उसके मन की मौज को मैं क्यों मारूँ? दो बात करके अपना जी बहला लेता है। मस्त मुस्कान। फिल्मों का असर उस पर ही नहीं मुझ पर भी। डॉक्टरनी मीमसाब—पगला। नहीं जानता मेरी उम्र क्या है? मेरी ही चीज। तो क्या? इस उम्र में कोई मेरा क्या बिगाड सकता है? मुरारी नाम नफीस। मुरारी फूलवाला और डाक्टरनी मीमसाब। मीठी जबान मीठी खुशबू। वर्ग-व्यवस्था तोडो, मीमसाब।

उस दिन उसने भी अपनी एक दोस्त से मुरारी फूलवाले के बारे में बात की तो उस दोस्त ने उसे समझाया 'वह पगला नहीं तू ही पगली है। अपने मन में झाँककर तो देख। ठीक कहते हैं पचास को पहुँचकर औरत पागल हो जाती हैं। लेकिन यह मत भूल पवित्रा कि तू नजर पैंतीस से ज्यादा नहीं आती और तेरा वह रोमियो तो तुझे बीस का ही समझता होगा और तू उसे लिफ्ट दे रही है। किसी रात दरवाजा तोडकर अंदर घुस आया तो क्या करेगी?' इस पर पवित्रा बोली 'वही जो पचास साल की डाक्टरनी मीमसाब को एक भोले-भाले मुरारी फूलवाले के साथ करना चाहिए।' इस पर दोनों दोस्त हँस तो दीं लेकिन हँसते-हँसते गंभीर भी हो गईं। पवित्रा की दोस्त दीनू ने उसे फिर समझाना शुरू कर दिया 'मीमसाब की बच्ची कान खोलकर सुन ले फिर न

कहना किसी ने तुझे वार्निंग नहीं दी। अखबार पढती है कि नहीं ? देखती नहीं कि हो क्या रहा है आजकल ? छोटे-छोटे नौकर बिजली ठीक करनेवाले कॉलिज के छोकरे, भोलेभाले पडोसी—सब ऐसी-ऐसी दहशतनाक हरकते कर रहे हैं अपनी बडी-बूढियो से कि रोएँ खडे हो जाते हैं, और तू एक अनजान पूरबिये माली के साथ हँसी-मजाक कर रही है। तुझे हो क्या गया है ? दिमाग खराब हो गया है तेरा ? अपना नहीं तो उसी का खयाल कर। तेरी उम्र अब फिल्मी सपने लेने की नहीं "

दीनू—जो खुद भी डाक्टरनी थी, पचास की हो रही थी। कुँवारी थी एक बडी कोठी म एक काली नौकरानी के साथ अकेली रहती थी—पवित्रा को देर तक उपदेश देती रही, जिसे सुनते-सुनते पवित्रा अनायास मुरारी फूलवाले की मस्त आँखो, लाल मुस्कराहटो, मीठी बातो को याद करती रही, उसके पान-बीडी की सुगध को सूँघती रही, उसकी खुरदरी अगुलिया के स्पर्श की याद से सिहरती रही। दीनू के चुप हो जाने के बाद उसने एक सिगरेट सुलगा लिया। काश कि मैं सचमुच पैंतीस साल की होती। मुरारी फूलवाले के साथ फूलवालो की सैर। शायद, एक बार तो कम-अज-कम सबको चकमा दकर। क्यो पगले, तू सचमुच मुझे बीस की समझता है ? दरवाजा तोडकर अदर घुस आएगा किसी रात ? सच, अखबारो की खबरे पढता है ? फिल्मे तो देखता ही होगा। फिर अचानक उसे न जाने क्या हुआ कि उसने सिगरेट को कुचल दिया, एक ठडी साँस ली, और बोली, 'दीनू, तू क्यो चिंता करती है ? हम दोनो को कुछ नहीं होगा, कुछ भी नहीं। हम इस दुनिया से कुँवारी ही चली जाएँगी डाक्टरी करती-करती। कोई फूलवाला हमारा दरवाजा नहीं तोडेगा। हम दोनो अछूत हैं, अछूत।' दीनू ने उठकर उसे अपने गले से लगा लिया। काफी देर तक दोनो एक-दूसरी की पीठ सहलाती और बिलखती रहीं।

इसके कुछ ही दिन बाद एक शाम पवित्रा ने फूल चुनते-चुनते मुरारी को बता दिया कि कुछ मीमसाबो को शक है कि उसके फूल चोरी के होते हैं। उसने सोचा था कि मुरारी सकपकाकर अपनी ईमानदारी की दुहाई देगा कहेगा— 'मीमसाब, बिसवास न हो तो एक दिन मेरे सग मेरे बाग मे चलिए, मेरा गाँव दूर नहीं।' लेकिन मुरारी फूलवाले ने ऐसा कुछ नहीं किया, बस एकटक डाक्टरनी मीमसाब की ओर देखना और मुस्कराना शुरू कर दिया, मानो कह रहा हो—मीमसाब आप कहे तो फूलो की चोरी छोड आपकी

चाकरी शुरू कर दूँ। पवित्रा को उसकी मुस्कराहट अश्लील नजर आई। पान खानेवाले की मुस्कराहट या भी अश्लील ही होती है। लेकिन मुरारी तो जान बूझकर अपनी आँखों से भी बेहयाई छलका रहा था। पवित्रा ने उसकी निगाहों की चुभन को अपने सीने में महसूस किया और बड़ी लाल आवाज में सख्ती से पूछा, 'ऐसे क्या देख रहे हो पगले? बताते क्या नहीं कि फूल चोरी के हैं या नहीं?' मुरारी ने मुस्कराना तो बंद नहीं किया आँख जरूर हटा लीं और बोला 'मीमसाब देख तो ईश्वर की लीला ही रहा था परंतु ईह सच है कि हम किसी मीमसाब से हराम का एक पइसा भी नाहि लवत।' पवित्रा ने कोमल स्वर में कहा, 'तो साफ क्या नहीं कहते कि फूल चोरी के नहीं तुम्हारे अपने ही बाग से आते हैं?' मुरारी फूलवाले ने हाथ जोडकर कहा 'मीमसाब अपना बाग कहाँ! अपनी तो दो-चार हाथ की बगिया ही होवै, उसी में जो उग आवै सो उग आवै हम चोरी काहे कू करेंगे?' पवित्रा ने कहा 'सच बोल रहे हो?' मुरारी फूलवाला तड़पकर बोला 'आपकी सौंगध!' पवित्रा को हँसी आ गई। 'का बताएँ, भइया आज फिर कइ दिन बाद हम पर मोतियन की बरखा भई आज फिर हमरे मन का मोर और हमरी परी दवी के तन का मोर एक-साथ नाचै। अब तुम ही बतावो भइया हमरा का होगा?' पवित्रा ने पैसे उसके हाथ मे देते हुए कहा, 'तू है सचमुच पगला। अच्छा यह तो बता तेरी बीवी तेरे साथ क्यो नहीं आती?' अरे भइया जब उसने बीवी की बखान छेड दीनो तो हमरी तो सासी हवा निकल गइन। हम कहिना तो ईह चाहते थे—मीमसाब आप ही हमरी बीवी आप ही हमरी देवी दूसरी न कोई। परन्तु हमरी हिम्मत न भई सो हम बोले—डाक्टरनी मीमसाब हम गरीबन कू कोउन बीवी देवैगो? न दुकान न मकान। दो-चार हाथ की बगिया और उसमे उगत ईह थोडे-से फूल। हम तो इस ससार से कोरे-कँवार ही उठ जावेंगे।' पवित्रा उसकी बात सुन सन्नाटे मे आ गई थी—तो इस पगले को भी अपने कुँवारपन की चिंता है। मेरी और दीनू की तरह बन रहा है या बना रहा है? पवित्रा का मन हुआ कह दे—पगले किसी दिन मुझे अपनी बगिया दिखाने तो ले चल। लेकिन उसे अपना मन मारकर रखने मे महारत थी इसलिए वह चुप ही रही। बस जाते-जाते जल्दी से इतना जरूर कह गई—'किसी दिन तुम्हारी बगिया देखने चलगे।' 'अरे भइया, ऊ दिन कब आवैगा? सायद तब जब हम बैकुठ चल जावैंगे।'

और फिर डाक्टरनी मीमसाब को न जाने क्या हुआ कि वह एकदम

गायब ही हो गई। कितने ही दिन बीत गए, वह फूल लेने न आई और न ही मुरारी फूलवाले को आती-जाती नजर आई। मुरारी उसकी बाट जोहता रहता। उसके मन मे मैले-मैले विचार आते, जिन्हे वह कुचल न पाता। मुरारी को अपने ग्राहक अच्छे न लगते ग्राहको को मुरारी के फूल अच्छे न लगते। मुरारी हर किसी से झगडता। हर कोई मुरारी से पूछता रहता—तुझे हो क्या हो गया है? 'हमरी तो, भइया भूख-प्यास-नींद सब उड गइन, जब से ऊ परी ने मुँह फेर लीना।' मुरारी के कपडे अब मैले होते, उसके फूल बासी। अब वह न मुस्कराता, न किसी मीमसाब से आँख मिलाता। बच्चो से तो उसे अचानक नफरत-सी हो गई थी। 'का बतावें, ऊ आज भी नहीं आई और हमरा मन कहत है कि ऊ कू कोई विपता है नहीं तो ऊ अपने पगले की खबर ता लेती।' महिलाओ मे खुसुर-फुसुर शुरू हो गई थी कि मुरारी की चोरी पकड ली गई होगी, इसलिए अब गले-सडे फूल लाता है और जला-भुना रहता है। 'अरे भइया, हम तो स्वय साले राख हो गए। फूलन की चिंता का करैं।'

आखिर एक दिन मुरारी से रहा नही गया। सुबह-सवेरे डाक्टरनी मीमसाब की कोठी पर जा पहुँचा। उसके हाथो मे घडे जितना बडा गुलदस्ता देखकर पवित्रा की नौकरानी हिन-हिन हँस दी। मुरारी ने गुस्सा दबाकर पूछा 'डॉक्टरनी मीमसाब कहाँ हैं?' इस पर नौकरानी की हँसी और लबी खिंच गई तो मुरारी तैश म आकर बोला 'अरी, हँसो काहे को हो गधो की भाँति? मीमसाब से कहो मुरारी फूलवाला आया है।' उसकी कडक मे कुछ ऐसा था कि नौकरानी सहम गई, बोली, 'डॉक्टरनी साब अस्पताल म बीमार पडी हैं।' गुलदस्ता मुरारी के हाथ से गिर गया। नौकरानी उसे उठाने के लिए झुकी तो मुरारी चिल्लाया, 'पडा रहन दो साले कू। बताव बीमारी का है?' नौकरानी और सहम गई। बोली, 'बडा फोडा है।' मुरारी ने धीमे से पूछा 'कहाँ है बडा फोडा?' नौकरानी ने अपने पेट के नीचे जाँघों के बीच दोनो हाथ रख दिए और कहा—यहाँ भइया। 'का बतावैं, मारे सरम और दु ख के हमरी तो अखियन बद हो रही थी और ऊ काली नौकरानी नीचे बैठी फूलन कू समेट रही थी।' मुरारी ने पूछा, 'घर कब आवेगी?' वह बैठी-बैठी ही बोली 'क्या पता आएँगी भी या नही।' मुरारी चिल्लाया 'असुभ मत बोलो।'

तभी दीनू कार से उतर भागी-भागी दरवाजे तक आई। नौकरानी के हाथो मे अस्त-व्यस्त गुलदस्त और उसके पास खडे अस्त-व्यस्त मुरारी को देखकर उसने रोना शुरू कर दिया। नौकरानी ने पूछा 'गुप्ता मेमसाब, क्या

हुआ यह ठीक तो है ?' दीनू ने रोते-रोते जवाब दिया, 'वह अब क्या ठीक होगी वह तो ' मुरारी ने नौकरानी के हाथों से गुलदस्ता छीनकर जमीन पर दे मारा और फिर उन्हें एक-दो बार पाँव-तले मसलकर भाग-सा उठा। भागते समय वह कुछ बिलबिला रहा था। दीनू दो कदम उसके पीछे गई फिर लौट आई।

अब गली के मोड़ पर खड़े उस नीम के पेड़ के नीचे एक बूढ़ा मोची बैठता है।

कोमल गांधार

तरुणकान्ति मिश्र

उसके बारे मे लिखने बैठकर सोचता हूँ, यह मेरे लिए सही नही होगा। उसके बारे म मै जानता ही क्या हूँ? इधर पच्चीस वर्षों से वह कहाँ है, कैसा है, जिंदा भी है या नहीं मैं नहीं जानता। उसके बारे मे लिखना मेरे लिए कितना उचित होगा, जबकि मेरा-उसका परिचय सिर्फ एक साल का था और जब हम दोना की उम्र थी महज चादह वर्ष। शायद मै उससे कुछ ही बडा था—यही कोई दो-चार महीनो का अतर।

फिर भी म लिखने बैठा हूँ। उस दिन की बात मुझे हू-ब-हू याद भी नहीं, उस पुराने छोड आए शहर का रूप भी मुझे ठीक-से याद नहीं। बहुत-कुछ अनुमान है, कुछ-कुछ आभास-भर।

किन्तु उसका चेहरा मुझे ठीक-ठीक याद है। अब भी मेरी आँखो के आगे वह चेहरा उभर आया है—घने काले घुँघराले बाल, चौडा ललाट लबी नाक गोरा सुदर आकर्षक मुखमडल।

उसका नाम तो बताया ही नहीं। उसका नाम हे सुमन्यु।

बालेश्वर से पिताजी का तबादला केन्दूझर हो गया। केन्दूझर के गिब्सन हाईस्कूल म मैने नाम लिखवाया दसवीं कक्षा म। इसी वर्ष मैट्रिक की परीक्षा दूँगा।

इसी स्कूल मे मेरा उससे परिचय हुआ।

उस दिन नए स्कूल मे पहली बार क्लास मे पहुँचकर मैं बडा कुठित हो गया था, शर्म से नहीं, बल्कि सकोच से। कक्षा में सबसे पिछली बच पर जाकर बैठ गया।

जहाँ बैठा था वहाँ सारी सीटे खाली थीं सिर्फ एक ही लडका बैठा था एकाकी—खुद को दूसरो से दूर रखता हुआ-सा। वह सुमन्यु था।

लबाई उसकी कोई खास नहीं थी, फिर भी वह पीछे बैठा था। आखिर क्यो, यह बात मेरी समझ मे बाद मे आई थी।

उसी पिछली बच में मेरा उससे परिचय हुआ था। पहले उसने चारा चोरी मेरी कॉपी म लिखा नाम पढ लिया। मेरी ओर देखा। मैंने भी उसकी कॉपी की ओर देखा—उसका नाम जानने क मकसद से। लेकिन कॉपी पर कोई नाम नहीं लिखा था। इसलिए मैंने पूछा 'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'सुमन्यु।'

बहुत दबी हुई धीमी आवाज थी उसकी। चौदह वर्ष की उम्र मे एक तरह की विशेष कर्कशता होती है गले म पर वैसी कर्कशता उसकी आवाज मे नहीं थी।

'मेरा नाम दीपक है। दीपक पटनायक।'

वह सिर हिलाकर मुस्कराया। उसका मतलब था—वह जानता है।

उसके बाद बातचीत का सिलसिला शुरू हो गया।

उम्र चौदह वर्ष पढते हो दसवीं कक्षा म और दस महीने बाद मैट्रिक की परीक्षा। इसलिए ये ही कुछ बाते करनी थीं—कोर्स कितना निकल चुका है, कौन-से सर कैसा पढाते हैं इत्यादि।

''तुम्हारी पोजीशन क्लास म क्या थी ?'' मैंने पूछा। मेरा आशय स्पष्ट था।

उसने कहा वह कक्षा म सेकड आता है।

मैं मन ही मन सतर्क हो गया। इसका मतलब अब यह मेरा एक प्रतिद्वद्वी होगा।

''टोटल मार्क्स कितने थे ?''

''चार सौ सत्तर।''

मैं आश्वस्त हुआ। मेरे मन की आशका क्षीण पडकर लुप्त हो गई।

''तुम्हारा एग्रिगेट कितना था ?'' उसने पूछा।

''मेरा था पाँच सौ सत्तासी।'' मैंने गभीर होते हुए कहा।

उसने मेरी ओर आश्चर्य से देखा। निश्चित ही उसने मुझसे इतनी बडी सख्या सुननी नहीं चाही थी। शायद मन ही मन कुछ झप भी गया होगा। उसी सकोच-भरे मन से उसने पूछा, ''तुम वहाँ फर्स्ट आते थे ?''

मैंने सिर हिलाकर हामी भरी।

सुमन्यु ने और कुछ नहीं कहा। चुप रहा।

''यहाँ फर्स्ट कौन आता है ?'' मैंने पूछा।

''इदु।''

अब तक मेरी नजर मे वह नहीं पडी थी। लेकिन इस बार देखा मैंने—क्लास की सबसे अगली पक्ति म एक सीट पर अकेली एक लडकी। सुमन्यु के कहे अनुसार, इदु।

''वही ?''

सुमन्यु ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी। मैंने देखा—तो यह है मेरी प्रतिद्वद्वी। मुझे बहुत अच्छा लगा, अपनी हमउम्र एक लडकी को अपना प्रतिद्वद्वी समझकर।

देखने मे खूबसूरत, पोशाक से लग रहा था जैसे किसी धनी परिवार की है। मैं मन ही मन उत्साहित हुआ।

''कितने नबर थे ?''

उस दिन पहली मुलाकात थी। इसलिए मैं देख नहीं पाया था कि एक अद्‌भुत सकोच सुमन्यु के चेहरे पर उभर आया था। साथ ही एक प्रच्छन्न गौरवबोध भी, किन्तु क्षणभर म वह अभिव्यक्ति उसके चेहरे से बुझ गई, क्याकि उसने कहा ''यहाँ बहुत स्ट्रिक्ट मार्किंग होती है। अधिक नबर नहीं मिलते। वैसे नबर मिले होते तो वह छह सौ से कम नबर न पाती। तुम नहीं जानते, वे बहुत ब्रिलिएट हैं, बहुत ''

सुमन्यु ने बात अधूरी छोड दी, क्योकि वह कहता अति सक्षेप म था, एकाध शब्द मे सब-कुछ कह डालना चाहता था लेकिन यहाँ नहीं कह पाया। रुक गया।

''वे बहुत ब्रिलिएट हैं। खूब अच्छा पढती है। तुम नए हो, नहीं समझोगे।''

फिर भी मैंने वह सख्या जाननी चाही क्योकि उसी सख्या पर मेरा काफी कुछ निर्भर था, ''कितने लाई थी वह लडकी ?''

मैं उस दिन नहीं समझ सका था कि मेरी आवाज मे कैसी उपेक्षा और अवहेलना फूट पडी थी, 'वह लडकी' कहने म। इससे सुमन्यु मुझसे निश्चित ही मन ही मन बडा असतुष्ट भी हुआ होगा, क्योकि बाद मे हमारा दोस्ती पक्की होने पर मुझे सुमन्यु को समझने का अधिक अवसर जो मिला था।

अत म सुमन्यु ने मुझे नबर बताए—पाँच सौ सत्ताईस मुझसे साठ नबर कम। म मन ही मन आशान्वित हुआ। उस लडकी को आगे देखा। मेरे चौदह वर्ष के किशोर मन म पुलक कौंध गई।

उस सचरित पुलक का मैंने अनुभव किया पहले ही दिन—एक बार नहीं, दो बार।

गणित-शिक्षक दु खीश्याम बाबू ने क्लास की उपस्थिति लेने के बाद आखिर म लिखा मेरा नाम पढा और पूछा—

"तुम वही हो ना बालेश्वर से आए हो?"

मन खडे होकर हामी भरी।

"क्लास म फस्ट आते थ? कितने नबर थे इस परीक्षा म?"

मैं इदु की ओर एक बार देख चुका था इस बीच। वह चुपचाप डेस्क पर रखी एक किताब की ओर देख रही थी। किन्तु गणित-शिक्षक का दूसरा प्रश्न सुनकर उसने पहली बार मेरी ओर देखा कुछ ही क्षणो के लिए।

मैंने अपने नबर बताए—'पाँच सो सत्तासी'। क्लास के सभी लडको ने पलटकर मेरी ओर देखा एक नए मेधावी छात्र को पहचानने के लिए। मैं पुलकित हो उठा था। हमारे यहाँ ब्वायज स्कूल था किन्तु यहाँ वैसा नहीं था जो कि किसी विकसित होते किशोर क लिए एक नई बात थी। और फिर यहाँ प्रतिद्वद्वी के तौर पर थी एक लडकी लगभग हमउम्र।

जब इदु न मेरी ओर देखा एक चचल सिहरन फैल गइ मेरे भीतर। मैंने उसकी ओर से दृष्टि हटाकर गभीर होने की कोशिश की।

"गणित मे कितने थे?" सर ने पूछा।

"कपलसरी मे सौ ऑप्शनल म निन्यानव।"

दु खीश्याम सर उस दिन बहुत खुश हो गए। उन्होने और भी कई बाते पूछी थीं।

हालाँकि मुझे शुरू से ही यह सदेह हो गया था कि सुमन्यु नामक वह पतला स्वास्थ्यहीन पर सुदर बालक मेरी उस प्रशसा से खुश नहीं हुआ था फिर भी सुमन्यु से मेरी मित्रता अति प्रगाढ हो गई थी। यद्यपि केवल एक ही

वर्ष के लिए थी, पर वह जल्दी ही मेरे बेहद करीब हो गया था, इतना अतरग कि वह मुझे अब भी अभिभूत करता है।

परतु उसने मुझे पहले ही बता दिया था कि तुमने उनसे अधिक नबर पाए जरूर है, किन्तु व पढती बहुत अच्छा है। वे अच्छी हैं। बहुत अच्छी ह। तुम नए आए हो, कुछ नहीं जानते। सच कहता हूँ, सुमन्यु का यह अवरुद्ध असतोष और विरोधी भाव मुझे वहुत अच्छा लगा था। कारण तो स्पष्ट है।

सुमन्यु ने पूछा था, "तुम्हारी हॉबी क्या है? तुम्हे कान-सा खेल अच्छा लगता है?"

"क्रिकेट।"

सुमन्यु मेरे उत्तर से असतुष्ट-सा लगा। मुझे कुतूहल हुआ। पूछा, "तुम्हारा प्रिय खेल क्या हे?"

"मुझे खेलना अच्छा नहीं लगता।" धीरे, शात भाव से जवाब दिया सुमन्यु ने, "यदि मरी हॉबी क बारे म पूछ रहे हा, तो " सुमन्यु ने कहा था "मरी हॉबी क्या है, मैं तुम्हे नहीं बताऊँगा। तुम समझ नहीं पाओगे।"

वाकई, उस वक्त मैं ठीक से समझ नही पाया था, पर यह सच हे कि म अभिभूत हुआ था। वरना आज, उन दिना के बीतने के पच्चीस वर्ष बाद उसे सहसा याद न करता और एक निरुपाय व्याकुलता मेरे अदर न छटपटाता।

"मेरी हॉबी तुम समझ नहीं पाओगे।" उसने मृदु स्वर मे कहा था।

"तो भी?" मैंने आग्रहपूर्वक सवाल किया था, "तुम्ह क्या अच्छा लगता है, क्या मैं समझ नहीं सकता?"

"नहीं।"

किन्तु अत म सुमन्यु ने कहा था, "मुझे सोचना अच्छा लगता है। चुपचाप बैठकर सोचते रहना बहुत अच्छा लगता है।"

"भला यह केसी हॉबी हुई? सोचना और सोचते रहना?" मुझे बडा आश्चय हुआ था।

"मैं बैठे-बैठे सोचता रहता हूँ, रात को सोने से पहले। घटो सोचता हूँ—कई तरह की बात, कइ लागो की बात। मुझ अच्छा लगता है।"

"सोचना अच्छा लगता है? सोचते-सोचते तुम्हे सिर-दर्द नहीं हो जाता?"

सुमन्यु मुस्कुराया।

रिसेस ऑवर मे आधे घटे की छुट्टी मिलती है। मेदा। मे खेल, कसरत,

दौड-पकड होती है, किन्तु सुमन्यु उस भीड-भडक्के, शोर-शराबे से दूर चला जाता है। जहाँ पेडो की छाया होती है, वह चुपचाप वहाँ बैठ जाता है। जब लडका को मैदान से वापस जाते हुए दखता है, वह भी उठकर खडा हो जाता है। छुट्टी खत्म हो गई।

मैं भी उसके साथ कई मर्तबा पेड की छाया की निर्जन समाधि तक गया हूँ। शुरू-शुरू म कभी-कभार उससे पूछकर, पर उसक बाद दाना इकट्ठ।

"अच्छा, तुम क्या-क्या सोचते हो बैठे-बैठे?" मैंने एक दिन पूछ लिया।

मेरा ऐसा सवाल सुनकर वह मुस्कुराया। बोला, "तुम वह सब नहीं समझ सकते। सब फालतू की बात हैं सोचने से कोई लाभ नहीं।"

मैं कुछ देर हैरत से उसकी ओर देखता रह गया। पूछा, "तुम कविता लिखते हो सुमन्यु?"

एक ऐसा विचार आना स्वाभाविक था। ऐसे लडको से ही इस तरह की कुछ आशा की जा सकती है—मैं यह जानता था।

सुमन्यु मुस्कुरा दिया मानो वह लुक-छुपकर कोई ऐसा अप्रिय काम कहीं कर रहा था पकडा गया है, अब बचकर निकल नहीं सकता।

"सही है ना? तुम कविता लिखते हो? कहानी लिखते हो?"

वह एक कवि है। इस बात का पता चलते ही मेरे अदर एक अद्‌भुत कुतूहल कौंध गया।

"क्या लिखते हो तुम? कैसा लिखते हो? कैसी कविताएँ लिखी हैं तुमने? कभी दिखाओ तो सही मुझे भी।"

मैंने कुछ कविताएँ पढी थीं एकाध कवि से भी मिला था। एक बडे कवि आए थे जब मै बालेश्वर मे पढता था स्कूल के वार्षिकोत्सव मे भाग लेने। देखने मे कितने भद्दे थे। पहनावे-ओढावे म एक अद्‌भुत असुदर ढग। दोनो हाथ रोयो से भरे हुए। नसे उभरी हुईं। जब भाषण दे रहे थे बडी चिढ आ रही थी। आवाज बडी कर्कश थी। उच्चारण भी अस्पष्ट।

मेरे चौदह वर्ष के अनुभव म कवि की छवि ऐसी ही थी। किन्तु सुमन्यु को देखकर पहली बार मेरे मन मे खयाल आया जिस तरह कवि और कविता को मैं समझता था शायद वह ठीक नहीं। यह सुमन्यु ही एकमात्र कवि है। उसके प्रत्येक शब्द प्रत्येक हावभाव कविता की एक-एक पक्ति हैं।

जब मुझे पता चला कि सुमन्यु कविताएँ लिखता है मुझमे उसके प्रति

एक गहरी अनुरक्ति आई। मैंने उसे नए रूप म देखने की काशिश की। उसके शब्दो और हावभाव मे नए अर्थ और नए प्रतीक तलाशने की चेप्टा की।

और सबसे आश्चर्यजनक थी उसकी अद्भुत लज्जाशीलता जिसे वह एक कठोर गभीरता मे छिपाए रखने की नाहक कोशिश करता था।

किन्तु कभी-कभी वह मुखर भी हो उठता है, अस्वाभाविक रूप से प्रगल्भ। मैं चुपचाप उसकी ओर देखता रहता हूँ, उसके चेहरे पर बदलती अभिव्यक्तिया को गौर से दखता हूँ, उसकी बात सुनता हूँ।

"तुम बडे होकर क्या बनना चाहते हो ?" अपनी बात कहते हुए बीच मे रुककर उसने यह सवाल किया मुझसे।

मैंने तुरत जवाब दिया था, "साइटिस्ट। मुझे साइस बहुत अच्छा लगता है, मैं साइटिस्ट बनूँगा। तुम ? तुम क्या बनोगे ?"

मेर प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया उसने, मानो मेरी बात उसने सुनी ही नहीं, अपने ख़यालो म कहीं खोया हुआ हो।

कुछ देर बाद, मेर प्रश्न की पुनरावृत्ति के उपरात बाला, धीर-धीर, मन ही मन कहने-सा—"मैं नहीं जानता, मैं क्या बनूँगा, मेरा क्या बनना उचित हागा। फिर भी मेरी इच्छा है—मैं कुछ ऐसा बनूँ, कुछ ऐसा करूँ, जिससे कि मरते समय मुझे यह अफसोस न हो कि मेरा जीवन व्यर्थ गया। मुझे ऐसा लगे कि अपने मरने क बाद भी मैं जिंदा हूँ।"

किशोर जीवन मे हालाँकि ऐसी कामना अति असाधारण नहीं है। अमर होने की अभिलाषा इसी उम्र म जगती है। मृत्यु को जीतकर समय से समझौता न करके, अमर जीवन पान की इच्छा—यही तो है इस उम्र का गुण।

मुझे ठीक से नहीं मालूम, सुमन्यु की कविता लिखने की इच्छा इस अमर होने की अभिलाषा से उपजी है या नहीं परतु वह लिखता बहुत अच्छा था। साहित्य मे नबर मेरे भले ही अच्छे आते थे, पर यह बात मुझे स्वीकारनी होगी कि लेखन-कार्य मुझसे कतई सभव नहीं।

सुमन्यु की कविताएँ भी मैं ठीक-से समझ नहीं पाता था। कठिन पक्ति दिखाकर उससे पूछता, "इस पक्ति का अर्थ तो बताओ ?"

वह मुझे समझाने की कोशिश करता।

परतु उसकी एक कविता पढकर मैं चौंक उठा। मेर गणितमय मन मे भी उसने एक लकीर खींच दी थी कुछ समय के लिए।

"यह कविता तुमने उसके बारे म लिखी है ?"

सुमन्यु का एक भीषण अपराध मानो मेरी नजरा म पकडा गया था उसने शर्म से अपना सिर झुका लिया। कुछ नहीं कहा।

पर यह कैसे सभव है ? जिससे उसने कभी बातचीत तक नहीं की जिसके सामने पड जाने पर भागने को रास्ता नहीं मिलता भला उसक बारे म वह लिखेगा।

सुमन्यु ने मेरी ओर भयभीत नजरा से देखा। डरे हुए स्वर म बोला ''यह बात किसी को मत बताना तुम्हे विद्या-कसम।''

''नहीं, मैं किसी को नहीं बताऊँगा।'' मैंने आश्वासन देते हुए कहा। किन्तु साथ ही मुझम कुतूहल भी जागा पूछा ''क्या तुमने इदु को यह कविता दिखाई है ?''

आतकित होते हुए सुमन्यु ने कहा ''नहीं-नहीं, मैं उन्ह कभी नहीं दिखाऊँगा।''

मुझे आश्चर्य हुआ। जिसके लिए यह कविता लिखी गई है उससे छिपाकर रखने की इतनी कोशिश क्या ?

कुछ देर चुप रहने के बाद सुमन्यु ने कहा था ''यह कविता म उन्ह कभी नही दिखाऊँगा। कभी नहीं। यदि वे जान गईं यदि वे जान गई कि मैने उन पर कविता लिखी है तो ''

''तो क्या हागा ?'' म समझ नही पाया।

''तो सच कहता हूँ, मैं जिंदा नहीं रहूँगा। सच कहता हूँ, आत्महत्या कर लूँगा।''

उसने मेरे हाथ से वह कविता छीन ली। उस कागज को ठाक-से मोडकर जेब म रख लिया।

इस घटना के कुछ दिनों बाद उसने मुझसे बेहद धीमे स्वर मे एक बात पूछी। वह प्रश्न शायद उतना गभीर नहीं था किन्तु उस उम्र मे वह प्रश्न काफी खतरनाक होता है।

उसने पूछा ''क्या यह पाप है ?''

''क्या ?''

''यही मतलब तुम बुरा मत मानना किन्तु ''

मैं सुमन्यु की कुठा देख उसे भरोसा दिलाने-सा बोला ''बोलो ? मैं बिल्कुल बुरा नहीं मानूँगा।''

रुक-रुककर झिझकते हुए उसने पूछा ''यही मैं जो मैं जो मन

ही मन इदु से लव करता हूँ, यह क्या निहायत पाप है ?''

''इस्स, पाप नहीं। पाप नहीं तो और क्या है ? यह तो निहायत बुरी बात है।''

मैंने जिस स्वर म यह बात कही, वह मेरा अपना स्वर नहीं था। अभिभावक का अनुकरण करनेवाला एक गभीर गला था।

सुमन्यु सिर झुकाए कुछ देर बैठा रहा। शायद उसने मुझसे कुछ दिलासा-भरी बात सुनने की उम्मीद की थी, किन्तु में उसे कोई दिलासा नहीं दे सका। लडकिया के बारे म मुझम कितना ही कुतूहल ओर आग्रह क्या न रहा हो, गुरुजना की तेज निगाह और कठोर अनुशासन के बीच बन एक असमय परिपक्व विवेक से बस यही बात निकली, खुद को खुद ही नसीहत देने-सा—''नहीं लडकियो के बारे म सोचना ठीक नहीं। वे अलग है, हम अलग। उनसे हमारा क्या सबध ?''

सुमन्यु ने हार नहीं मानी। मुझसे पूछा, ''अच्छा, सच बताना इदु को देखने पर तुम्हे कैसा लगता है ?''

इदु को देखने पर मुझे कैसा लगता था, यह मुझे अब भी स्पष्ट याद है। अब भी मेरे मन म एक चचल सिहरन फैल जाती है। उसका वह पद्रह वर्षीय कुमारी-रूप मैं अब तक नहीं भूल पाया हूँ। सिर पर घने काले बाल, जो काफी लबे और खूबसूरत, घनी काली भौंहो के नीचे दो उज्ज्वल गहरी आँखे नर्म हाठ और सफेद मोतियो-से दाँत—कुल मिलाकर वह सुदर ही नहीं दिखाई देती बल्कि महिमान्वित लगती है। खूब शात धीर स्वभाव की लडकी थी वह। स्कूल का सबसे बदमाश लडका भी उसे चिढाने का साहस नही कर पाता था।

मैं इतनी सारी बाते लिखकर भी जितना समझा नहीं पा रहा हूँ, उतना सुमन्यु ने बडे सक्षेप मे मुझे उस दिन समझा दिया था। मेरी छोटी-सी 'बहुत अच्छी लडकी है' राय सुनने के बाद थोडी देर चुप रहकर दबी हुई उसाँस छोडते हुए उसने कहा था, ''उसे देखने पर मुझे कैसा लगता है, में बिल्कुल नहीं समझा सकता दीपक। उसे क्लास मे देखने से मुझे ऐसा लगता है मानो मेरे जीवन मे और किसी चीज की जरूरत नहीं, इस जीवन मे मैं और कुछ नहीं चाहता। मैं इस समय यहाँ मर भी जाऊँ तो मुझे गम नहीं होगा। में सुखी हूँ। मैं धन्य हूँ।''

केवल दूर से एक झलक पाने मे बडा सतोष है, यह बात शायद कइयो

को अद्भुत लगेगी। 'बिना किसी संवाद के निकट सान्निध्य की कोई लालसा न रख, उतने ही म परितृप्त होने से' उदाहरण शायद अधिक नहीं हैं।

किन्तु सुमन्यु ऐसा ही था।

मैंने कहा, "जरा देना मुझे यह कविता। मैं फिर से अच्छी तरह पढ़ना चाहता हूँ।"

उसी दिन वह कविता लेकर मैंने अपने पास रख ली। किस कुमति में पडकर मैंने ऐसा काम किया था, वह मैं आज तक ठीक-से समझ नहीं सका। यह वास्तव म एक दुस्साहस-भरा काम था—कम से कम मेरे लिए। ऐसा बदमाशी (हाँ, बदमाशी नहीं तो और क्या?) मैंने अपने जीवन म कभी नहीं की थी। उसके बाद भी कभी हिम्मत नहीं हुई। वही मेरा प्रथम और अंतिम कलुषित अपराध था।

नहीं, कलुषित मैं नहीं कहूँगा। वह पाप था मैं यह भी स्वीकार नहीं करता, हाँ अपराध जरूर था—प्रचलित सामाजिक मूल्यबोध के हिसाब से।

परतु अपने उस अपराध का प्रायश्चित मैंने नहीं किया। जिसने किया वह सुमन्यु था। उसकी आँखा से उस समय आँसुआ की धार बह चली था उन्हीं आँसुआ और सिसकियो के बीच उसने काँपते हुए मुझसे कहा।

उसने जो कहा वह बाद की बात है। उससे पहले जो कुछ घटित हुआ, पहल वह बताता हूँ।

सुमन्यु से उसकी वह कविता लेने के दो दिन बाद इदु के पिता हमारे स्कूल आए थे। बडे गभीर गुस्सैल। वे एक बडे ऑफिसर थे। उन्हे हमारे स्कूल म सभी पहचानते थे। उनका सुदर मकान भी हम सबने देखा था।

इदु के पिता ने स्कूल आकर हेडमास्टर से कुछ बातचीत की। उसके बाद चले गए। उनके जाने के तुरत बाद हेडमास्टर साहब हमारी क्लास म आए। हाथ म एक लबी छडी। उस छडी की करामात से हममे से कोई अनजान नहीं था।

क्लास म पहुँचकर उन्होने कडी आवाज मे पुकारा "सुमन्यु!"

सुमन्यु क्लास मे अन्यमनस्क बैठा था जिस तरह वह अधिकतर बैठता है। अपना नाम सुनकर वह खडा हो गया।

"यहाँ आओ।"

सुमन्यु टेबुल के पास गया।

हेड साहब ने अपने हाथ से पकडा हुआ एक कागज उसे दिखाया।

"यह तुमने लिखी है ?"

सुमन्यु ने वह कागज देखा। पहचान गया। एक सिहरन-भरा विस्मय उसके भीतर कौंध गया—यह कागज हेड साहब के पास पहुँचा कैसे ?

मैं भी चौंक उठा। परतु मेरे चौंकने का क्या कारण था ? दो दिन पहले ही तो मैंने खुद इस कविता के नीचे सुमन्यु मिश्र नाम लिखकर डाक से भेजा था इदु के घर के पते पर। उसके घर का पता हमारे स्कूल म भला कौन नही जानता!

मैंन ऐसा क्यो किया था ? क्यो ? नहीं, मैं स्वय नही जानता। भगवान कसम, मैं नहीं जानता। परतु भेज दिया था। आज इदु के पिता हमारे स्कूल आए थे। इस समय हेडमास्टर के हाथ म वही अभिशप्त कागज था। मेरी आँखो के आगे अब पूरी तसवीर साफ थी, दिन के उजाले की तरह।

सुमन्यु के होठो से एक अनकही यत्रणा की भाषा निकल आई। सटासट छडी बरस रही है उस पर। हेडसाहब बडे गुस्सैल है। इसके अलावा उनका नीति-नियम सबधी ज्ञान भी अधिक है। आज सुमन्यु की खैर नहीं, यह सोचकर मै काँप उठा मन ही मन।

हेड साहब की छडी-रूपी साँप की लपलपाती जीभ सुमन्यु को कोमल, कमजोर देह को चाटती चली जा रही थी। उसी जहरीली ज्वाला से सुमन्यु नीचे बैठ गया—दोनो हथेलियो से अपना चेहरा ढँककर, बहते आँसुआ की श्रावणी धारा को छिपाते हुए। किन्तु उसकी सिसकियाँ रुक नहीं पा रही थीं। सुमन्यु के बदन पर नीले-नीले चकत्ते उभर आए थे।

दड देने के बाद हेड साहब ने एक छोटा भाषण दिया था हमे। मनुष्य के जीवन म चरित्र ही सबसे बडी चीज़ है। जिसका चरित्र नही, वह पशु है। उन्हाने यह कल्पना नहीं की थी कि सुमन्यु नामक एक मेधावी छात्र ऐसा नीच काम करेगा। जिस आर्यभूमि ने भारतवर्ष मे महात्मा गाधी और बुद्ध जैसे महामानव को जन्म दिया है आदि, आदि।

हड साहब का भाषण शायद और लबा हुआ होता लेकिन रिसेस की घटी बज उठी। वे लौट गए।

इस आकस्मिक घटना से हतप्रभ और विमूढ दूसरे सभी छात्र तुरत क्लास छोडकर चले गए। शायद कुछ और तजी से।

क्लास खाली हो जाने के बाद मै सुमन्यु के पास गया। सुमन्यु टेबल के पास उसी तरह उकडूँ बैठा आँसू पोछ रहा था।

''सुमन्यु ?   '' मैंने सहमी हुई आवाज मे पुकारा। उसका आहत देह पर हाथ रखने का साहस मुझमे नहीं था।

उसने मेरी आवाज नहीं सुनी।

''सुमन्यु   भाई मैं तुम्हारा कसूरवार हूँ। मैंने तुमसे बगैर पूछे   ''

मेरे अदर न जाने कहाँ से इतने आँसू, इतना दु ख, इतना पछतावा इकट्ठा हो गया था। मैं फफक-फफककर रोने लगा, उसके एक हाथ से अपना मुह दबाए हुए।

सुमन्यु ने अपना हाथ मेरे हाथ से खींच लिया। मैं उसके पास बैठा उसी तरह रोता रहा। अब उसकी आँख सूख चुकी थीं, किन्तु मेरी आँखों से आँसुओ की धार बहती रही। मैने रोते हुए कहा ''मुझे माफ कर दो सुमन्यु! मुझे नहीं मालूम था नहीं मालूम था ''

इस बार सुमन्यु का हाथ मेरी ओर बढ आया था। मेरी पीठ पर हाथ रखते हुए उसने भर गले से कहा ''मैंने तुम्हारा क्या बिगाडा था, दीपक? क्यों किया तुमने मेरे साथ ऐसा   ?''

''मुझसे बहुत बडी गलती हो गई, सुमन्यु! मुझे माफ कर दो!''

''अब   अब मैं किसे मुँह दिखाऊँगा? मै कैसे जीऊँगा!''

उस दिन का वर्णन और अधिक बढाने का अभिप्राय मेरा नहीं है। पर इतना लिखना काफी होगा कि उस दिन सुमन्यु पिछली सीट पर बैठा चुपचाप रो रहा था और मैं दूसरो से नजरे बचाकर बीच-बीच मे उसकी पीठ सहला देता था। क्लास खत्म होने के बाद हेडमास्टर के निर्देशानुसार उसे डिटेड रहना पडा शाम छह बजे तक। मै स्कूल-गेट के पास खडा बडी बेचैनी से उसका इतजार करता रहा।

शाम छह बजे एक उदास किशोर क्लास-रूम छोडकर बाहर निकला। दिनभर की शारीरिक यातना और मानसिक यत्रणा से वह टूट चुका था। उसके बाल अस्त-व्यस्त थे। आँख लाल। होठ काँप रहे थे। गेट के पास आते ही मैं उसकी ओर बढ गया। मैं जानता हूँ, सुमन्यु मेरा अपराध कभी माफ नहीं करेगा। मैं ही उसकी इस दुर्दशा का एकमात्र कारण था।

आज यह दड मुझे मिलना चाहिए था। परतु दड मुझे नहीं मिला। जिसे दड मिला वह सुमन्यु था। कोई नहीं जान सका कि दोषी मैं हूँ।

सुमन्यु निर्दोष है।

यह सोचते हुए आगे बढते ही मैं सहसा ठिठक गया। मैंने देखा गेट से

कोई और भी बाहर आ रहा है—एक अशरीरी परछाईं-सा।

शाम के धुँधलके मे उधर जो दिखाई दी, मैं उसे पहचान गया। वह इदु थी।

इदु के बारे म मैंने अभी तक कुछ नहीं बताया। वैसे भी उसके बारे म कहने को और बचा ही क्या था? वह दिन-भर अति गभीर-सी अपनी जगह बैठी रही। सुमन्यु जब छडी की मार खाकर रो रहा था हेड साहब जिस समय चरित्र पर भाषण दे रहे थे, पिअन जब नोटिस लकर आया कि सुमन्यु आज शाम छह बजे तक डिटड रहेगा, इदु पूरे समय खामोश थी। मानो उसम जान नहीं थी। पत्थर बन चुकी थी।

लेकिन इस समय इदु मेरे सामने थी। वह गेट से धीरे-धीरे बाहर आई छुपती हुई सहमी-सी। अपने सामने इदु को देखकर सुमन्यु ठिठक गया। उसके कुछ कहने से पहले इदु का आवेग से कपित वाष्परुद्ध स्वर सुनाई दिया—

"सुमन्यु, मैं तुम्ह बहुत चाहती हूँ।"

उस समय सारी दुनिया शात निर्जन हो गई मानो। आकाश म सध्या का विपण्ण अधकार। हवा म गति नहीं थी। सारा परिवेश सुनसान और वीरान था। उसी परिवेश मे यह स्वीकारोक्ति सुनाई दी—अद्भुत, असहाय और विदीर्ण। मुझे ऐसा लगा, मानो उस स्वर ने खामोशी से फैलकर सारे आकाश और अँधेरे को ढँक लिया। निढाल हवा म जान फूँक दी।

उसके बाद इदु सुमन्यु के और करीब चली गई। बोली, "सुमन्यु, म सचमुच तुम्ह चाहती हूँ।"

गहरी वेदना और आँसुओ से इदु का स्वर भीग गया। उसकी साँसो की गति मानो तेज हो उठी। उसने अपने दोना हाथो से सुमन्यु को अपनी छाती म भींच लिया। उसके हाठा को चूमा। उसके बाद एक झटके मे खुद को अलग करके अँधेरे मे समा गई।

सुमन्यु एक वज्राहत वृक्ष-सा कुछ देर वहीं खामोश खडा रहा, सिर झुकाए स्थिर, निश्चल। मानो उसका सीना सहसा नि स्पद हो गया। साँस नहीं निकल रही थी। शरीर म प्राण नहीं था।

उसके बाद कुछ हरकत हुई उसके शरीर मे। वह धीरे-धीरे चलने लगा, प्रेतायित गति-सा, उद्देश्यहीन।

मैंने अपनी छिपी हुई जगह मे ही खुद को छुपाए रखा। बाहर नहीं निकला काफी देर तक। उसके बाद आकाश के असख्य तारो के मेरी ओर

देखते हुए टिमटिमाकर हँसने पर एक आहत पशु-सा मे बाहर निकला।

अगले दिन सुमन्यु से मुलाकात नही हुई। नहीं, उसके अगले दिन भी नहीं। धीरे-धीरे एक अफवाह पूरी क्लास मे फैल गई। सुमन्यु घर छोडकर कही चला गया है। किसी से कुछ बताए बगैर। ठीक उसी दिन रात को।

बाकी के जितने दिन मे उस शहर मे रहा, सुमन्यु की कोई खबर फिर मुझे नहीं मिली। स्कूल पास करके कटक आकर मेने कॉलेज मे नाम लिखवाया। उसके बाद मेरे जीवन के पच्चीस वर्ष पानी की तरह बह गए, किन्तु मुझे उसकी फिर कोई खबर नहीं मिली।

मे नहीं जानता सुमन्यु इस समय कहाँ है। मे नही जानता वह जिंदा भी है या नहीं। शायद वह यहीं कहीं है, हमारे बीच। शायद वह मेरी यह कहानी पढेगा। पढकर मुस्कुरा देगा। 'कायर--डरपोक' इतना वह कहेगा मुझे मन ही मन।

वाकई मैं कायर हूँ। डरपोक हूँ। वरना उस दिन की उस घटना के बाद मै अपना अपराध इस तरह नीच-सा कैसे छिपाए रखता? क्या मुझमे इतना साहस था कि जाकर कह सकता—यह कविता सुमन्यु ने नही भेजी थी, मैने भेजी थी इदु को। मुझे दीजिए, जो दड देना हो।

नहीं, मै यह नही कह सका। उसकी वजह यह थी कि मने इदु को कभी दिल से नहीं चाहा। सिर्फ उसकी सुदरता देखकर मुग्ध और सतुष्ट हुआ हूँ। उसका आकर्षित करते रहना ही मेरे मुग्ध-सतुष्ट मन की कामना थी। इसीलिए एक कायर-सा एक डरपोक-सा मै चुप रहा। पर सुमन्यु—आँखो के आँसू और हृदय की यत्रणा लिये वह चला गया। शायद बहुत दूर, जिस दूरी को पार करने के बाद पाने और न पाने का अर्थ एक हो जाता है, आनद और वेदना का अतर मिट जाता है।

वह दूरी शायद सभी पार नहीं कर पाते।

अनुवादक राजेन्द्रप्रसाद मिश्र

विस्फोट

से० रा० यात्री

रमेन्द्र रात को देर से लौटा। सदर दरवाजा खुला पड़ा था। नीचेवाले फ्लैट के लॉन पर तृतीया की मद्धिम चाँदनी फैली हुई थी, और बरामदे म खुलनेवाली खिडकिया से मरकरी रॉड का प्रकाश बाहर फैल रहा था। रमेन्द्र दूसरी मजिल पर रहता था, इसलिए उसे अपना स्कूटर खडा करन की सुविधा नहीं थी। वह नीचे वाले इजीनियर साहब की कार के पास ही उसे खडा कर देता था। स्कूटर खडा करके जब वह जीने के सामने जाकर खडा हुआ, तो उसे जीने का दरवाजा बद देखकर बडा आश्चर्य हुआ। रमेन्द्र के दूसरी ओर रहनेवाले इनकमटैक्स आफीसर जगोटा कभी इस तरह दरवाजा बन्द नहीं करवाते थे। और रमेन्द्र का नौकर पिछले कई दिना से अपने गाँव गया हुआ था। आख़िर यह दरवाजा बन्द किया तो किसने ? गर्मी की शिद्दत से परेशान, कई घटे बाहर रहने के कारण बौखलाया हुआ रमेन्द्र आक्रोश म भरकर दरवाजा पीटने लगा। आदमी बाहर से थका हुआ घर लौटे, कोई उसकी प्रतीक्षा करनेवाला भी न हो, और ऊपर से द्वार भी बन्द मिले, तो उसका धीरज छूट जाना स्वाभाविक है। उसने किवाडा को भडभडाया किन्तु द्वार नहीं खुला। शायद किसी ने उसकी आवाज सुनी भी नहीं, क्याकि अगल-बगल के सभी फ्लैट्स मे रेडियो ऊँची आवाज मे चीख रहे थे।

रमेन्द्र प्राय देखता था कि जब भी उसका स्कूटर कम्पाउँड मे दाखिल होता था, तो नीचवाले इजीनियर भल्ला साहब की पुत्री अलका खिडकी से अवश्य झाँकती थी। कभी-कभी वह रमेन्द्र के लौटने के समय बरामदे म बेठी या टहलती भी दिखाई पड जाती थी। अपनी अन्तर्मुखी प्रकृति के कारण रमेन्द्र ने इधर-उधर आपचारिक जान-पहचान का दायरा बिल्कुल नहा बनाया था। इजीनियर साहब से भी *हलो* या *हाऊ डू यू डू* के अतिरिक्त वह कोई बातचीत नहीं करता था। किन्तु सरो जैसी लम्बी, दुबली चम्पई वर्ण अलका भल्ला साहब की पुत्री, से उसका कुछ ऐसा मूक समझौता हो गया था, कि वह रमेन्द्र के लौटने पर अपनी उपस्थिति का सकेत अवश्य दे देती थी। रमेन्द्र का अधैर्य ओर अकेलापन अलका की गतिविधिया से प्राय सतोष म बदल जाता था। उसके हिम-श्वत रग पर बडी-बडी कजरारा आँख मानो समुद्र की अथाह गहराई से परिपूर्ण थीं। वेश-भूषा की दृष्टि से भी उसम सुरुचि आर विविधता की कमी नही थी—कभी वह रेशमी साडी म लिपटी दिखाई देती थी तो कभी कसी हुई जीन्स पहने लॉन मे टहलती रहती थी। प्राय उसकी आँख फेन्स पर केन्द्रित हो जाती थीं, और वह चेहरे पर फैली अनियत्रित लटों को पीछ की आर झटकती रहती थी। चाँदनी राता म कई बार रमेन्द्र ने उसे स्वप्निल-सी अवस्था मे गहरी हरी मरकत-सी घास पर धीरे-धीरे टहलते देखा था।

इजीनियर भल्ला सवेरे जरा जल्दी ही घर से निकल जाते थे, और प्राय रात हो जाने पर लौटते थे। अन्तस्थ रहने के कारण अथवा थकान से लस्त होकर लौटने के बाद वह घर म ही रहते थे। क्लब या दूसरे स्थाना को जाते हुए, रमेन्द्र ने उन्हे कम ही देखा था। हाँ घर मे किसी छुट्टी के दिन धमा-चौकडी अवश्य दिखाई पडती थी। कई-कई युवक-युवतियाँ आधुनिकतम सज्जा म, बाहर बरामद तथा कमर म मिली-जुली पजाबी-अग्रेजी बोलते सुनाई पडते थे। रमेन्द्र को यह बात इजीनियर भल्ला के परिवार के लिए कुछ *विचित्र-सी लगती थी, क्याकि वह उन लोगा को साधारण अवस्था म* बहुत मुखर नहीं पाता था। रमेन्द्र जब भी अलका को देखता तो उसे लगता कि अलका एक अशरीरी मानवी है। उसको सभवत छुआ भी नहीं जा सकता। रमेन्द्र सोचता कि शायद अलका का निर्माण ऐसे उपकरणा से हुआ है जिनमे पूजा के अर्घ्य जैसी पवित्रता है। रमेन्द्र के इस विश्वास को अलका के बदले हुए भिन्न परिवेशा से बडा बल मिलता था। वह कई बार देखता था कि

अलका का पलँग लॉन मे पडा है, उस पर अत्यधिक सफेद चादर और दुग्ध-श्वेत गिलाफ चढे कई तकिए पडे हैं और उन तकिया के बीच अलका नि स्पद पडी है। ऐसे अवसरो पर अलका का मुख अत्यन्त पीला और भावुक हो जाता था, सिलवटे पडी चिकन की श्वेत साडी हवा मे फूल जाती थी और बिना तेल के शुष्क उठे-उठे केश तथा श्वेताभा के परिपार्श्व म उसकी रुग्णता का परिवेश एक अद्भुत आकर्षण उत्पन्न करता था। धूप सारे लॉन पर फैल जाती थी, हरसिंगार और रातरानी के झाडा के नीचे श्वेत-पीत पुष्पा के गोल दायरे बिछे रहते थे, और वह मसहरी पर तकियो का सहारा लिये अधलेटी पडी रहती थी। उसके सिरहाने तिपाई पर एक सुनहरे रग की सुराही और बिल्लोरी गिलास रखा रहता था। ऐसे क्षणो म वह कोई अभिशप्त देवागना प्रतीत होती थी। रात्रि के समय अलका को इस स्थिति मे देखने पर रमेन्द्र की नींद पूरी रात के लिए उड जाती थी, और वह अपने बिस्तर से उठकर दबे-पाँव बालकनी म आकर खडा हो जाता था। कई बार अलका को वह जागते तथा करवटे बदलते हुए पाता था। अलका के साथ कभी-कभी उसके माता-पिता भी बाहर ही अपना बिस्तर लगवा लेते थे। उन राता का भी रमेन्द्र साक्षी था, जब अलका के स्थूलकाय पिता जोर-जोर से खर्राटे लेते थे, और वह पलँग पर उठकर बैठ जाती थी, अथवा बिस्तर से उतरकर लॉन म घूमने लगती थी।

जैकेरेण्डा गुलमोहर और मेहँदी के गाछ जब फूलकर महक उठते थे, और सारा कम्पाउँड सुगन्ध से महमह करने लगता था, तो न जाने क्यो रमेन्द्र को यह आभास होता था कि अलका भीतर ही भीतर कोई बडा अधैर्य पाल रही है। वह शान्त सयत और आवाहनमयी मुद्रा भी कभी-कभी इतनी निर्वेद और अनासक्त दिखाई पडती थी कि रमेन्द्र सिहर उठता, और सोचता कि अलका इस जनाकीर्ण जगत से बहुत दूर की वस्तु है, जो रक्त-मास से बने मनुष्य के लिए सर्वथा दुर्बोध और अलभ्य है। रमेन्द्र के पास आनेवाले एक कवि किस्म के मित्र यदि अलका को देख लेते, तो यह कहना न भूलते—'माई डियर ब्वाय, नोट इट, दिस गर्ल इज मेड आफ व्हिम्स ऐण्ड मूड्ज'। रमेन्द्र उनकी बात पर मुस्करा देता। शायद यही ठीक हो। किन्तु उसने अलका के स्वरूप को पूर्णतया नए प्रतिमानो से निर्मित कर लिया था। वह अपने बनाए हुए स्वरूप को लेकर बहुत व्यस्त और एकान्तिक हो उठता था। मन के एक नितान्त गोपन स्थल पर उसने अलका को प्रतिष्ठित कर लिया था। रमेन्द्र को

अब कभी भी यह अभाव महसूस नहा होता था कि उसका अलका से कैसा भी सम्बन्ध नहीं है। उसने अलका से कभी खुलकर बातचीत नहीं की बमुश्किल दो या तीन बार पूरी हिम्मत जुटाकर जब-तब उसने उस स्वर्ग की देवी के सम्मुख इन्ही अलौकिक या पारलौकिक प्रतिमानो को कहने की चेष्टा की (यानी आप मेरी आराध्य, मेरे मन-मन्दिर मे बसी मूर्ति ह 'छूने मात्र से कलुषित होनेवाली 'वन्दनीय 'प्रतिपल उपासना के योग्य' हे) उसकी जबान हर बार लडखडा जाती, सकोच-मिश्रित भय से आधे-अधूरे शब्दो-वाक्यो के साथ किसी अपराधी की तरह भाग खडा होता।

इस पर अलका, पहले क्षणो उत्साहित-आह्लादित होती। उसके अधरा पर मुस्कान खिलती, परन्तु रमेन्द्र के फोरन खिसक जाने पर वही मुस्कान तिरस्कार मे परिणत हो उठती। इधर रमेन्द्र समझता कि बहुत दिनो के नेकट्य ने मानसिक दूरी को समाप्त कर दिया था और रमेन्द्र के मन म निरन्तर एक निर्धूम अग्नि-शिखा जलती रहती थी जिसे वह अपने स्नेह का एकमात्र साक्ष्य मानता था। ऑफिस मे कार्य की व्यस्तता के बीच उसे कभी-कभी यह एहसास हाता, मानो अलका उसकी प्रतीक्षा म आकुल ह। जब भी रमन्द्र दुस्साहस करके अलका की ओर गहरी दृष्टि से देखता तो अलका के मुख पर बरबस एक प्रोज्ज्वल मुस्कान थिरक उठती। रमेन्द्र जब भी अलका और अपने सम्बन्धा के विषय मे सोचता, तो उसे लगता कि उन दोना के बीच मे शब्दा का माध्यम आने तक को शायद एक पूरी जिंदगी गुजर जाएगी। किन्तु प्यार की यही धीमी गति उसके जीवन की सुगन्ध बन गई थी। अपने फ्लैट म जाने पर उसे लगता कि अलका उसके प्रत्येक पदक्षेप को ध्यान से सुन रही है और ठसके हृदय की विह्वलता को समझ रही है। प्रत्येक समय उसे ध्यान रहता कि अलका उसके किस कार्य को किस दृष्टि से देखगी। और इस तरह अलका ठसके आचरण मे समा गई थी।

जिस समय रमेन्द्र अपने जीने का दरवाजा पीट रहा था, वह निरन्तर अलका के विषय म ही सोच रहा था। वह जीने के द्वार से हटकर लॉन की ओर मुड गया इस खयाल से कि शायद अलका दीख जाए। यह एक अनोखी बात ही थी कि स्कूटर की भट्-भट् से अलका आज बाहर नहीं निकली, अन्यथा उसका दैनिक क्रम था कि रमेन्द्र के विलम्ब से लौटने पर भी अलका किसी न किसी प्रकार अपनी उपस्थिति का सकेत अवश्य दे देती थी। अलका के इन्हीं सकेतो ने वाणी के अभाव को अर्थगर्भित बना दिया था। रमेन्द्र ने

सोचा, 'हो सकता है कि अलका आज कहीं बाहर चली गई हो।' कभी-कभी गाडी लेकर वह घूमने भी निकल जाती थी। किन्तु गाडी हस्बमामूल खडी थी। अपने तर्क-वितर्क से परेशान होकर, उसने सिर को झटका, और आगे बढकर जीने के बन्द द्वार पर ठाकर मारी। इस बार दरवाजा भडाक-से खुल गया, और बहुत ही व्यस्तता से एक छोकरा जीने से निकलकर भाग खडा हुआ। रमेन्द्र विस्फारित नेत्रो से उसे देखता रह गया। वह रमेन्द्र के फ्लैट के पिछली ओर कम-आय वाले लोगो के लिए बने क्वार्टर्स मे रहता था। एकाध बार रमेन्द्र ने उसे यहाँ आते-जाते देखा था। वह लडका शाम को इजीनियर साहब के कुत्ते को टहला लाता था। वह निहायत आवारागर्द लगता था। चिपटी हुई शर्ट और ड्रेन पाइप पहनकर, बडी-बडी अनियत्रित लटे लटकाए, वह बेफिक्री से सीटी बजाता आता था, और बिल्कुल 'टेडी ब्वाय' मालूम पडता था। रमेन्द्र आश्चर्य से कई बार सोच चुका था कि ऐसे लडके को इजीनियर साहब जैसे आभिजात्य के घर मे किस प्रकार प्रवेश मिल गया।

जीने मे अन्धकार फैला हुआ था। दरवाजा खुल जाने पर भी केवल बाहर के प्रकाश से कुछ-कुछ मद्धिम प्रकाश अन्दर फैल रहा था। उस दमघाटू वातावरण मे रमेन्द्र ने दीवार से सटी एक छाया देखी। वह स्विचबोर्ड के बिल्कुल निकट खडा था। उसने हाथ बढाकर जीने की बत्ती जला दी। रोशनी होते ही सारी स्थिति साफ हो गई। इतने दिना मे रमेन्द्र ने भूलकर भी जिस बात की कल्पना नहीं की थी, उसे वह स्वय अपनी आँखो से देखने को विवश हो गया। उसकी पूजित प्रतिमा अभिशप्त होकर खण्ड-खण्ड हो चुकी थी। जो सामने दीवार से चिपकी मूर्ति खडी थी, क्या उसे ही अलका कहा जा सकता था? बाल बिखरकर सारे चेहरे पर फैले हुए थे। चेहरे से अविराम पसीना बहकर उसकी गर्दन और शरीर के दूसरे भागो को सराबोर कर रहा था। नीली सलवार और कुर्ता लगभग भीगकर बदन से चिपक रहे थे, तथा जगह-जगह मिट्टी के धब्बे लगे हुए थे। अलका ने चलने का कोई उपक्रम नहीं किया। वह अपने एक पाँव के पजे से कोठरीनुमा जीने की दीवार ठकठकाती रही। जीना शुरू होने से पहले इधर-उधर काफी जगह थी। जीने के ठीक नीचे एक छोटी-सी कोठरी थी, जिसमे रमेन्द्र के नौकर को एक झिलँगी-सी खाट पडी थी। अनायास रमेन्द्र की दृष्टि उस खाट पर चली गई। अलका ने तटस्थ भाव से उसकी दृष्टि का अनुसरण किया। उमस के कारण रमेन्द्र जरा-सी देर मे पसीने से नहा गया। उसकी मन स्थिति बहुत विषम थी।

वह जीने पर आगे जाने के लिए बढ़ा, और उसके मुख से अनायास एक आह-जैसी साँस निकल गई। बाहर की ओर बढ़ते हुए, अलका के पाँव ठिठक गए, मानो रमेन्द्र ने उसकी जलती हुई आँखों को देखा। यंत्रचालित-सा वह नीचे लौट आया और बिना यह समझे कि वह क्या कह रहा है, अलका से बोला—"अलका यह तुमने क्या किया?"

उसे लगा कि यह वाणी उसकी नहीं थी। शायद यह विसर्जित-विखंडित प्रतिमाओं का सम्बोधन करने का एकमात्र वाक्य था। शायद पहले भी देश-काल की सीमाओं को तोड़कर कातर वाणी में कहा गया यह वाक्य विश्वास टूटने पर फिजाओं में कई बार गूँजा होगा।

अलका ने उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। वह दीर्घ-आयत नेत्रों से रमेन्द्र को घूरती रही, और फिर उसकी दृष्टि सामने दीवार पर केन्द्रित हो गई। अलका के मुख से एक सर्द आह निकल गई और वह अपनी कुहनियों पर लगी मिट्टी झाड़ने लगी।

रमेन्द्र के हृदय में न जाने कहाँ से इतना दुर्दम साहस आ गया कि वह बोला—"अलका एक अनुरोध मानोगी? तुमसे मैंने कभी कुछ नहीं कहा। क्या केवल कुछ मिनटों के लिए तुम मेरे साथ ऊपर चल सकोगी?"

अलका निरुत्तर रहकर ही जीने पर चढ़ने लगी। और रमेन्द्र आगे बढ़ गया। रमेन्द्र नहीं जानता था कि वह ऊपर जाकर अलका से क्या कहना चाहता है। फ्लैट के दरवाजे पर पहुँचकर, उसने झुककर ताला खोला, और अन्दर चला गया। अलका उसके पीछे-पीछे चलकर देहरी लाँघ गई और उसने दरवाजा बन्द कर दिया। बड़े कमरे में पहुँचकर रमेन्द्र ने मरकरी लाइट न जलाकर मद्धिम बत्ती जला दी और अलका को सोफे पर बैठने का संकेत किया। चाबी को रेडियोग्राम पर फेंकने के बाद, उसने रेफ्रीजरेटर खोलकर पानी की दो बोतल निकालीं, और गिलास भरकर अलका के हाथ में थमा दिया। अत्यधिक ठण्डे पानी से गिलास के बाहर वाष्प फैल गई। अलका ने पानी नहीं पिया केवल अँगुली से भाप हटाती रही। रमेन्द्र ने एक गिलास पानी लिया और अलका के सामने जाकर बैठ गया। रमेन्द्र ने क्षणभर कुछ सोचने की कोशिश की किन्तु उसके मस्तिष्क में सभी चीजें बिखरी-बिखरी और गड्डमड्ड हो रही थीं। रमेन्द्र का गला बैठ गया था। उसने खाँसकर कुछ कहना चाहा मगर वह यह नहीं सोच पाया कि कहे तो क्या कहे? अब कहने को बाकी था ही क्या? मगर इतने वर्षों में यह कैसी आँखमिचौनी चलती रही?

कुछ तय न कर पाने की स्थिति मे रमेन्द्र ने फुसफुसाकर कहा—"अलका मैं तुम्हे पूजा की वस्तु मानता था। इतने वर्षों मे मैं तुमसे बोलने का साहस तक नहीं जुटा सका। कम से कम मेरे समर्पण को इतनी निष्ठुरता से तो न ठुकराती। घनघोर बीहड पथ म दूरान्तर पर उलझे जिस तारे पर मेरी दृष्टि थी, क्या उसी नक्षत्र को तोडने का लोभ तुम्ह था? मैं अभी न जाने कितनी दर तक धैर्य से तुम्हारे सकेत की प्रतीक्षा कर सकता था। तुमने मेरी प्रतिमा का एसी निर्ममता से विसर्जन क्या किया?"

रमेन्द्र की बात की उस पर न जाने इतनी घातक प्रतिक्रिया क्या हुई कि उसने पानी का गिलास खट से टेवल पर रख दिया वल खाती हुई-सी वह उठ खडी हुई, ओर तडपकर बोली "वाह रे आपका भावोच्छ्वास! अर्घ्य अर्पण करने के लिए ही आप मुझे ऊपर लिवाकर लाए हैं? म आपका चन्दन-चर्चित भाव-नैवेद्य बहुत स्वीकार कर चुकी।" और फिर वह हथेली से अपनी ओर सम्बोधन करके बोली—"आप मेरे इस सगमर्मरी अपरूप स्वरूप को जिस दृष्टि से देखते हैं, क्या वही सच है? आपकी दृष्टि म यह स्वरूप पूजने की वस्तु हो सकता हे, किन्तु मेरी शिराआ मे बहते उत्तप्त लहू की प्यास उस मात्र पूजा की दृष्टि से नहीं बुझती।"

वह शिथिल होकर बैठ गई। और रमेन्द्र उसक चेहरे पर फैलते तीखेपन को देखकर त्रस्त हो गया। रमेन्द्र के कुछ न बोलने पर वह विद्रूपता से मुस्कराकर बोली, "यदि मुझे इस निरीह अवस्था म अस्त-व्यस्त रात के ग्यारह बजे कोई आपके कमरे मे अकेले बन्द देख, ता क्या यही खयाल करेगा कि आप मुझे अर्घ्यदान देने यहाँ लाए हैं?"

यह कहने के साथ ही वह उठकर खडी हो गई, और हिंस्र भाव से उसे देखती, कमरे से बाहर चली गई।

रमेन्द्र उठकर खडा हो गया। उसकी आँखो के आगे इतना अपरिचित अन्धकार था कि इतने विस्तृत आकाश मे उसे एक भी तारा दिखाई नही दिया। जीने का दरवाजा जोर से बजा और एक वेहद अपरिचित पदचाप रात के सन्नाटे मे विलीन हो गई।

खेल अँगूठी का

यूसुफ इदरीस

अँगूठी चिराग के सामने है और हर तरफ खामोशी छाई है। कान बहरे हो चुके हैं। उस खामोशी मे एक अँगुली खुलती है और चुपक-से यह अँगूठी उसमे चली जाती है और चुपके-से चिराग भी बुझाया जाता है। जब चारा तरफ अँधेरा हो तो आँखे अपने-आप अधी हो जाती हैं।

वो बेवा है लगभग पैंतीस बरस की—लबी-पतली गोरी और खूबसूरत ओरत। उसकी तीन बेटियाँ भी उसकी तरह लबी निकली हैं ओर बिल्कुल उसी की तरह हँसी-मजाक वाली और जिंदादिल भी बिल्कुल उसी की तरह। तीना अपने ढीलेढाले कपडे कभी नही उतारतीं, चाहे घर मे मातम हो या खुशी। सबसे छोटी सोलह साल की है और सबसे बडी बीस साल की। तीना लडकियाँ माँ के उलट बेहद बदसूरत हैं। न नाक न नक्श। गहरी काली रगत उनको अपने स्याहफाम बाप से विरासत मे मिली है—मोटी, भद्दी। बदन म माँ-जैसी एक भी ढग की गोलाई नहीं। माँ की कोई चीज उनम नहीं आई है, सिवा लबे कद के।

उनका घर बस एक अदद कमरा है। कमरा छोटा होने के बावजूद दिन म उनके लिए काफी होता है। गरीबी के बावजूद उनका यह छोटा-सा घर साफ-सुथरा है। सिर्फ सुथरा ही नहीं आरामदेह भी है और उस मेहनत के

नतीजे म है जो ये सब उसको सजाने ओर सँवारने मे करती हैं। रात को उनके जिस्म इस कमरे म इधर-उधर बिखरे पडे होते हैं—बिल्कुल जिंदा और गर्म गोश्तपोश्त क बडे-बडे ढेरो की तरह, एक अदद चारपाई पर और बाकी उसके इर्दगिर्द। ये गर्म-गर्म जिस्म राता को साँसे छोडते हैं। अगारो पर लोटते हैं। गहरी और सर्द आह भरते हैं।

खामोशी और उदासी इस घर मे तब से राज कर रही है जब से उस मर्द का इतिकाल हुआ है, जो एक का शौहर और बच्चियो का बाप था। दो साल पहले वो लबी बीमारी के बाद मर चुका था। हालाँकि उसकी मौत बहुत पहले हुई थी, मगर मातमी माहौल अभी भी नहीं गया था। इसलिए मातम मे खामोशी भी शामिल होती है। मगर इधर खामोशी लबी खिंच गई थी। अगर इस खामोशी का बगौर जायजा लिया जाए, तो इसकी वजह मातम नहीं, बल्कि अनहोनी के इतिजार की खामोशी थी।

दिन बीत गए। लडकियाँ और बडी हो गईं और वे कब से अपने दूल्हो की उम्मीद मे बैठी थीं, लेकिन न दूल्हे इधर आए और न कोई पैगाम ही उन्होने भिजवाया। किसी का पैगाम क्योकर इधर आता ? क्या लडको का दिमाग खराब हो गया था जो इन बेसहारा और गरीब लडकियो के यहाँ अपना नाता जोडते जबकि ये लडकियाँ यतीम भी थीं। मगर दुनिया उम्मीद पर कायम है। बकौल किसी के—सडी हुई सब्जी का भी कोई अधा खरीदार होता है।

इसी तरह हर किस्म की लडकी का भी कहीं कोई खरीदार बैठा होता है। अगर कहीं भूख है और वहाँ लडकी भी हो, तो जरूर कहीं कोई उससे ज्यादा गरीब लडका उसका खरीदार है। अगर कोई लडकी बदसूरत है, तो उससे भी बदसूरत लडका उसको अपनाने के लिए आमादा बैठा है। अरमान एक न दिन जरूर निकलते हैं उम्मीदे जरूर पूरी होती हैं, मगर उसके लिए सब्र पहली शर्त है।

उस गरीब घराने की खामोशी तब टूटी जब एक कारी (पढनेवाला) मरहूम को सवाब पहुँचाने के लिए हर जुमुआ को बाद-दोपहर यहाँ कुरआन की तिलावत (पाठ) के लिए आता था। तिलावत करनेवाला एक अधा था जिसका पेशा सिर्फ मुर्दों के लिए तिलावत करना था और उन्ह सवाब पहुँचाना था। जब वह इधर आता, तो अपनी छडी से दरवाजा खटखटाता। जो भी दरवाजा खोलता, वह अपना हाथ अधे के हाथ मे दे देता, ताकि उसको हिफाजत से अदर ले आए। अधा अदब से आलती-पालती मारकर नीचे चटाई

पर बैठता। जब तिलावत स फारिग हो जाता, तो अपना हाथ दाएँ-बाएँ मारता, अपने जूतो की तलाश म। घरवाला को अलविदाई सलाम करता मगर कोई भी उसक सलाम का जवाब दना गवारा न करता और खामोशी स चला जाता। इसलिए अधा कारी आदतन हर जुमुए को बाद-दोपहर यहाँ आता है और आदतन किसी से कुछ कहे-सुने बगैर चला जाता ह। इसीलिए हर शख्स उसके आने-जाने से बेतअल्लुक था।

वह आता तिलावत करता तो तिलावत स ही घर की खामोशी हफ्ते म एक बार टूटती। एक जुमुए को कारी नही आया, क्योकि उसका एग्रीमेट खत्म हो चुका था। इस करार के खत्म होने से बेवा और उसकी लडकियो को एक और कमी का अहसास होने लगा। यह भी तो सही नहीं कि खालिस उसी की तिलावत से ही घर को खामोशी टूटती थी, मगर उसकी आवाज अकली मर्दाना आवाज थी जो इस घर म हर हफ्ते गूँजती थी। अब तक घरवाला ने एक आर बात को भी नोट कर लिया था कि वह अधा जरूर था, लेकिन उसके कपड साफ-सुथर हात थ। उसके जूत पॉलिश किए हुए होत थे। उसका साफा इतने उम्दा तरीके से बँधा होता था कि आँखवाले भी वह काम इस खूबी स नहीं कर सकते थे। जितना वह पाक-पाकीजा था, उतनी ही उसकी आवाज असरदार गहरी व पुरवकार थी। घर मे एक हगामी इज्लास बुलाया गया कि क्यो न उस अधे से दाबारा करार किया जाए आर उसको इसी वक्त बुला लिया जाए। अगर वह इस वक्त मसरूफ होगा, तो क्या हुआ। उसका इतिजार भी तो किया जा सकता ह। इतिजार इस घर के लोगो की रग-रग म बस चुका था। फिर आज हा वह साँझ-सवेरे आया और तिलावत करने लगा। घरवालो को ऐसा लगा कि जसे वह आज पहली बार तिलावत कर रहा है। तब आपस मे सलाह-मश्वरा होने लगा कि क्यो न हमम से एक इस अधे से ब्याह कर ले। कम से कम घर मे एक मर्दाना आवाज सुनने को मिलेगी और घर भी जन्नत की तरह एक अदद मर्दाना पुरवकार आवाज से बस जाएगा। वह तो अब तक कुँआरा ही है। उसके मुँह के ऊपर बाल अभी निकले हैं और मस भीगी हैं। और क्या शानदार नौजवान हे वो। चुनाचे लफ्ज ही लफ्ज को जन्म देता है और अल्फाज उसकी तारीफ मे निकलने लगे और कहा गया कि वह भी किसी अच्छी भली नेक बीवी क इतिजार म बैठा होगा।

लडकियाँ सलाह-मश्वर म मगन थीं और माँ खामोशी से उनके चेहरे को तक रही थी कि इन तीना म से कौन-सी उसके लिए मुनासिब है? बाते

तो बाते होती हैं। उनकी बिसात क्या जब तक उन पर अमल न किया जाए। वे तीनो एक साथ माँ से बोल उठीं, "क्या हम इतना अरसा सब्र और इंतिजार करने के बाद एक अधे से शादी कर ? हरगिज नहीं।"

अस्ल म वे तीना अपने दूल्हो के सुहान सपने सजाए बैठी थीं। भला अधा कभी दूल्हा हो सकता है ? अब तक तो उन्होने सिर्फ आँखवाला को दूल्हा ब ते देखा था। बेचारी गरीब व लाचार भोलीभाली लडकियो को क्या मालूम मर्दों की दुनिया। उनको क्या मालूम मर्दो की पहचान उनका आँखे नही होतीं।

"माँ, तुम उससे शादी कर लो ना। माँ, तुम कितनी अच्छी हो, प्यारी हो करो ना उससे शादी।"

"अरी बदबख्तो। तुम लोगा को मालूम है, तुम क्या कह रही हो ? शादी करने की उम्र तो तुम लोगा की हे, मैं तो अब मरने के इतिजार म बैठी हूँ मगर मरने से पहले तुम्हारे हाथ तो पीले कर दूँ। तब जाके चैन से मर सकती हूँ।"

"माँ, हम ठीक कह रही है। देखो माँ, इस घर मे कोई कमी नही, बस एक मर्दाना आवाज की कमी है। मान लो माँ, कर लो उससे शादी।"

"अरी कमीनियो, तुम लोगो को मालूम हे, तुम क्या बक रही हो ? दुनियावाले क्या कहगे ?"

"माँ, लोग तो बस यूँ ही बोलते रहते हैं। कहने दो, क्या कहेगे ? उनकी बक-बक से हजार गुना बेहतर और जरूरी यह है कि औरतो से भरे घर म एक मर्दाना आवाज भी शामिल हो।"

"तुम लोगो को ब्याहने से पहले खुद शादी कर लूँ ? हरगिज नहीं। नामुमकिन।"

"माँ, जरा ठडे दिमाग से सोचो क्या तुम्हारी शादी इसलिए जरूरी नहीं कि एक मर्द की वजह से दूसरे मर्द इस घर का रास्ता देखे। जब और मर्दों का आना-जाना यहाँ रहेगा तो लडके अपने-आप हमारे लिए आएँगे और तुम्हारे बाद हमारी भी शादियाँ होगी। माँ तुमको यह कुर्बानी देनी पडगी हमारी खातिर हमारे लिए।"

बेवा की शादी अधे कारी से हो गई। घर म एक आदमी की बढोतरी हो गई। आमदनी भी पहले के मुकाबले म बढ गई मगर इसके साथ ही एक और मसअला उभरकर सामने आया।

यह सच है कि पहली रात मियाँ और बीवी एक ही बिस्तर मे सोए, मगर दोनो की हिम्मत न पडी कि लडकियो की मौजूदगी म वे एक-दूसरे को

हाथ भी लगाएँ। उन्हे मालूम था कि काली रात म भी छह अधा आँख सर्चलाइट की तरह उन पर जमी हैं। उनसे सिर्फ कुछ फासिले पर थीं, ऐसी सर्चलाइटे। यह सर्चलाइट सिर्फ उनकी आँख ही नहीं, बल्कि उनके कान भी थे। लडकियाँ बालिग थीं। उन्हे सब मालूम था। वे हर चीज से बखूबी वाकिफ थीं। उनकी इस जाग ने इस कमरे को रात के अँधेरे मे भी जैसे दिन के उजाले मे बदल दिया था। मगर दिन मे घर म ही मौजूद रहने के लिए लडकियो के पास कोई उपाय न था। वे तीनो सुबह-सवेरे एक के बाद एक घर से बाहर चली जातीं और शाम को घर लौटतीं। शरमाई, लजाई हिचकिचाइ एक-एक कदम आगे बढातीं और फिर तेज-तेज कदमो से अदर दाखिल होती हैं, बिल्कुल बौखलाई हुई। कमरे मे एक खूबसूरत मर्दाना आवाज के कहकहे और जनाना खिलखिलाहट की आवाजे सुनतीं। दोनो को एक हसीन छेडछाड और मस्ती म झूमते पातीं और सोचतीं—इस मर्द को क्या हुआ ? कैसे बदल गया है इन चद दिना म ? पहल तो बडा सभ्य शर्मीला और भोला बनता था और अब इस कदर बेबाक और नटखट।

माँ उनको आते देखकर बडी गर्मजोशी से उनका स्वागत करती, बलाएँ लेती। अपने नगे सिर को ढाँपने की कोशिश करती। उसके बाल भीगे होते और वह लगातार हँसती रहती। उसका मुरझाया चेहरा जो बुझे चिराग की तरह था झुर्रियो ने मकडो की तरह अपने जाल बुने थे, अचानक खिला हुआ व तरोताजा हो गया था। मुर्दनी की जगह नूर ही नूर था। उसका चेहरा बिजली के बल्ब की तरह दहक आर चमक रहा था। उसकी आँखो मे एक खास किस्म की चमक थी। कुछ अरसा पहले ये आँखे अदर को धँसी हुई थीं, मगर अब सेहतमद और खूबसूरत हा गइ थीं और अपन वजूद क अहसास दिला रही थीं। उनम खुशी के आँसू भी झिलमिला रहे थे।

खामोशी पूरे तोर पर जाती रही। दस्तरख्वान पर सुबह व शाम खाने से पहले और खाने के बाद मजे-मजे की बाते होतीं। दुनिया-भर के किस्से-कहानियाँ सुनी और सुनाई जातीं। कभी-कभी गाना की महफिल भी होती, क्याकि अधा उम-कुलसूम और अब्दुल वहाब क गान बिल्कुल उन्हीं की तरह मधुर आवाज मे गा सकता था। वह गाता तो सामने बैठे लोगो के दिलोदिमाग खुशी से झूम-झूम उठते।

''माँ तुमने अच्छा किया जो हमारी बात मान के शादी कर ली। हम लोग सुब्होशाम यहाँ कहकहे लगाते हैं। बाहर आने-जानेवाले हमारी इस हँसी

को सुनगे और हमारे लिए पैगाम भिजवाएँगे।"

"हाँ, मेरी प्यारी रानी बेटियो! जरूर मर्द इस तरह आएँगे और तुम्हारे लिए पैगाम देगे और मैं तुम सबो को एक-एक करके रुख्सत करूँगी।"

अस्ल म उसे उनकी शादी की फिक्र कम थी, मगर अपने नौजवान शौहर की मौजूदगी उसे ज्यादह परेशान और फिक्रमद कर रही थी। क्या हुआ वह अधा है! हम लोग तो अधे नहीं। वह नौजवान है। सेहतमद है। उसने अपनी भरपूर जवानी से उसकी उजडी वीरान जिंदगी म खुशियो के खजाने भर दिए है। उसकी बढती उम्र और नाकामी को कमउम्री और कामयाबी मे बदल दिया था।

खामोशी इस घर से ऐसे दुम दबाकर भाग गई थी कि फिर उसने लौटकर इधर आने का नाम न लिय़ा, खामोशी की जगह आवाज और हगामे ने ले ली थी। शौहर उसका था हक़-हलाल का शौहर, खुदा और रसूल के अहकाम के मुताबिक। अपने हक से शर्म किस लिए? जो कुछ हो रहा है, कानून व शरीअत के तहत हो रहा है। अब उसे किस बात का डर है? वह अब अपने जज्बात को उसके सामने क्यो छुपाती? रात को जब लडकियाँ सो जातीं, तो दो जिस्म और दो रूह आजाद छोड दिए जाते। रात की खामोशी मे कुछ सरसराहट होती। साँसें तेज-तेज चलतीं। हिलना-डुलना, भिनभिनाहट— और फिर सन्नाटा छा जाता। यह सन्नाटा फौरन ही ठडी आहो के एक लबे सिलसिले से टूट जाता।

दिन मे वह औरत कई अमीर घराना म कपडे धोने जाती और उसका शौहर मरनेवालो के यहाँ कुरआन की तिलावत करने निकलता। पहलेपहल वह जब सुबह काम पर निकलता था तो शाम होने से पहले कभी घर लौटता न था। कुछ अरसे के बाद वह दोपहर मे घर आ जाता ताकि रातो के जाग के बाद दिन मे खुद को कुछ आराम तो दे और आनेवाली रात के लिए और जागरण के लिए खुद को तैयार रखे।

एक रात उसने अपना फर्ज निभाने के बाद अपनी बीवी से पूछा कि इस वक्त तो वह कबूतरी की तरह बोल रही है, उसे दिन मे क्या हुआ था कि आग्रह पर भी बोलने से इनकार किया जैसे मुँह मे जबान न थी, और वो अँगूठी जो उसने उसे शादी पर दी थी क्यो दिन मे उतारकर रखी थी? उसकी बाते सुनकर वह हैरान रह गई। इस जुर्म पर तो सजा-ए-मौत दी जा सकती है। यह जो कह रहा है, इसका सिर्फ एक मतलब है 'मेरे अल्लाह! 'यह मैं

क्या सुन रही हूँ ? मेर कान फटत क्या नहीं ? मुझे मौत क्यो नहा आती ? यह 'यह मै क्या सुन रही हूँ ? उसकी साँस बद हो गई ओर वह वेहोश-सी हो गई, मगर इस बेहोशी म भी वह बरावर जाग रही थी। सिर्फ उसकी आवाज गायब हो चुकी थी। सिर्फ हवास काम कर रहे थे। अब उसक सामने सिर्फ एक सवाल था—एक मसअला कि कुसूरवार कौन है ? कई वजहा से उसे पूरा यकीन था कि हो न हो, यह दूसरी ही हो सकती है, क्याकि उसकी ही ऑखो मे इतनी बेबाकी ओर वेहयाई है कि उसी न यह गुनाह किया होगा। पहल भी उसन महसूस किया था और सुना था कि रातो को तीनो की साँस तेज-तेज चलती थी। वे सर्द आहे भरतीं। ऐसे अँगडाइयाँ लेतीं जैसे अगारो पर लोटती हा, जैसे प्यासी जमीन बारिश की बूँदो के लिए तरसती है। मगर इस वक्त वह समझ नही पा रही थी कि बेटिया मे मुजरिम कौन-सी है ?

जब से उसे दूसरी जायज शादीशुदा जिंदगी नसीब हुई थी वह अपनी पुरानी जिंदगी को बिल्कुल भूल गई थी। अपनी पिछली शादी की यादगार अपनी बेटियो की समस्याओ को भी भुला दिया था। लडकिया के लिए सब्र करना भी फजूल साबित हुआ था। दूल्हा की आस भी अब बाकी नहीं रही थी।

अचानक किसी अहसास ने उसको आज चौंका दिया कि उसकी जवान बेटिया के भी कुछ तकाजे हे। तकाजे ही नहीं, जायज माँग। यह सच है कि हरामकारा गुनाह हे, मगर भूख का क्या किया जाए ? भूख की शिद्दत म जब जान पर बन जाए, तो हर चीज हलाल हो जाती है। उसकी रूह को भूख ने फना किया था। उसकी हड्डियो का रस भूख ने चूस लिया था। वह इस भूख को ओरो से ज्यादह जानती थी।

उसकी बेटियाँ भूखी थीं। दूसरी शादी के बाद वह उनकी भूख को सिरे से भूल चुकी थी, जबकि बचपन म उनके खाने की भूख मिटाने के लिए अपने हिस्से का कोर भी उनके मुँह म डालती थी। फिर वह ये सब-कुछ कैसे भूल गई थी ?

उसका शौहर उसे बोलने पर इसरार कर रहा था मगर वह खामोश रही। आवाज हलक म फँस गइ। इस घटना के बाद फिर वह कभी न बोल पाई।

सुवह जव वे लोग नाश्ते के लिए दस्तरख्वान पर बैठे उसका अदाजा सही निकला। उसकी तरह दूसरी बेटी ही खामोश थी। शाम को अधा नौजवान हस्बे-मामूल हँसता-गाता खुशी-खुशी घर लौटा मगर आज उसकी हँसी म

और कोई शरीक नहीं हुआ, सिवा बडी और छोटी बेटी के।

सब्र बराबर होता रहा मगर अब सब्र का मजा भी किरकिरा होने लगा। सब्र बीमारी म बदल गया था, मगर मजाल हे किसी ने उफ तक की हो। फिर एक रोज बडी बेटी की नजर माँ की उँगली म पहनी हुई अँगूठी पर पडी। वह अँगूठी की तारीफ करने लगी और बराबर करती रही। अँगूठी की तारीफे सुन-सुनकर माँ का दिल जार-जोर से धडकने लगा। बेटी ने माँ की खुशामद की कि वह एक रोज के लिए इस अँगूठी को पहनना चाहती हे, सिर्फ एक दिन की बात ही तो है! माँ ने खामाशी से अँगूठी निकाल दी आर बेटी ने खामोशी से उसे पहन लिया।

दूसरे दिन जब शाम को सब दस्तरख्वान पर बैठ गए, बडी बटी खामोश थी। एक शब्द भी न बोली। अधा नाजवान पहले की तरह चहक रहा था आर आज उसके चहकने म सिर्फ छोटी बेटी शरीक थी।

दिन बीत गए। छोटो भी अब बडो हो चुकी थी। परेशान और फिक्रमद। अपनी बदकिस्मती से बेजार अब इतनी बडी हो चुकी थी कि माँ की अगूठी पहनने के लिए दो टूक इसरार करने लगी। अगूठी के इस खेल म अब सिर्फ वो रह गई थी और अपनी बारी का इतिजार खामाशी म करती रही थी। और खामोशी से उसे हासिल करने म आखिरकार वो भी कामयाब हो गई और खामोश हो गई।

अँगूठी, अब किसी खास उँगली की जीनत न रही थी। एक खामोश एग्रीमट के मुताबिक अँगूठी की जगह चिराग के सामन मुकर्रर की गई। खामोशी ने फिर से उस घर म डेरा जमा लिया। कान अधे बन गए थे। खामोशी से अँगूठी अब बारी-बारी पहनी जाती। चिराग बुझाया जाता। अँधेरा किया जाता। अँधेरे मे यूँ भी आँखे देख नहीं पातीं और अधी हो जाती हैं।

अब कोई न हँसता, न गाता न खेलता—सिवाय अधे क। वह अकेले ही ज्यादह से ज्यादह शोर करने लगा। उसकी एक आरजू थी कि वा यह जान कि घर के सब लोग चुप क्यो हैं ? उसके साथ क्या नहीं हँसते क्यो नहीं गाते ? वो देख पाता तो पूछता वजह ? शुरू-शुरू म उसे लगा कि औरत की फितरत मे है कि वह कई-कई रग बदलती हे। कभी शबनम की तरह तरोताजा, कभी इतनी बासी जैसे मिट्टी के घडे का पानी। कभी इतनी नर्मोनाजुक जैसे गुलाब की पखुडी कभी इतनी खुरदुरी जैसे बबूल का पेड, मगर वह उँगली म हमेशा उसकी शादी म दी हुई तोहफ की अगूठी पहन होती

है। मगर यह तो सच है कि जिस उँगली म वह पहनी होती है वह बदल-सी जाती है। उसे कुछ-कुछ शक हो चला था। उसके सिवा बाकी सब लोगा को अँगूठी के बदलने का राज मालूम था।

एक शाम दस्तरख्वान पर अधे स सवाल किया गया कि वह इस टोनी से किस हद तक वाकिफ है ? अगर है तो इस पुरअसरार ख़ामोशी को तोडने पर क्या तुला है ?

इस सवाल पर उसका निवाला उसके हलक म फँस गया। उसी लम्हे उसने भी आइन्दा खामोश रहने म अपनी खैरियत समझी। भला वो इस खामोशी को क्याकर तोडने की जिद करे ? वो इस बात से ख़ौफजदा था कि अगर यह खामोशी कभी टूटी तो कैसी कयामत बरपा होगी।

इस तरह इस बार की खामोशी एक अलग ही किस्म की थी—पुरअसरार खामोशी। इस बार खामोशी की वजह महरूमी थी, न गरीबी, न बदसूरती, न इतिजार, न सब्र और न नाउम्मीदी। यह खामोशी की एक गहरी किस्म थी। एक मजबूत और नए किस्म का अनोखा मुआहिदा जिसके लिए उन्होने कोई शर्त न रखी थी जो वजूद मे न लाया गया बल्कि खुद वजूद मे आया।

बेवा और उसकी तीन बेटियाँ।

एक कमरा।

नई खामोशी।

यह खामोशी अधा कारी इस घर म लाया है जो बार-बार खुद को यकीन दिलाता है कि राता को जो औरत उसके साथ होती है, वह उसकी बीवी ही है—जायज और कानूनी बीवी, क्योकि वह अँगूठी पहने होती है जो अधे ने उस शादी पर बतौर तोहफा या मेहर दिया था। उसकी बीवी जो कभी कली होती है, कभी फूल, कभी मोटी, कभी बासी और खुरदुरी, कभी पतली *और कभी मोटी होना ता यह मरी बीवी का मुआमला है। वो जाने और उसका* खुदा जाने। य तो उन लोगो का मुआमला है जिनकी आँखे हैं। मुझ गरीब अधे का इसमे क्या कुसूर है ? यह तो सरासर आँखावालो की जिम्मेदारी है जो चीजो की परख कर सकते हैं। वह तो सिर्फ शक कर सकता है—ऐसा शक जो आँखो के बगैर दूर नहीं हो सकता और जब तक वह अधा है वो कैसे इस शक को दूर कर सकता है ? चूँकि वो अधा है इसलिए अधे पर न कोई कानूनी और न ही कोई अख्लाकी फर्ज आयद होता है या होता है ?

मत रोओ, आंटी

मणिका मोहिनी

एक लम्बे अर्से बाद वह उस शहर मे पहुँचा था ट्रासफर होकर। कितने वष बीत गए, वह हिसाब लगान लगा ता उसे आश्चय हुआ कि सचमुच समय के पख होते है। पच्चीस वर्ष—एक पूरा युग—गुजर गया था। पच्चीस वर्षों बाद वह शहर उसे कितना नया लग रहा था जैसे अभी-अभी नहाकर निकला हो स्वच्छ निर्मल कान्ति बिखेरता हुआ। स्टेशन पर यदि शहर के नाम का कोई बोर्ड न होता तो जगमगाती हुई निओन लाइटो और पग-पग पर पसरी हुई मैगजीनो तथा चाय-पूरी की रेहडियो के इर्द-गिर्द ठेलमठेल करती भीड मे वह पच्चीस वर्ष पूर्व के शहर का तालमेल न बैठा पाता। उन पच्चीस वर्षों मे वह शहर कितना बदल गया था। कच्ची सडके पक्की बन गई थी और पेडो का कहीं नामोनिशान नहीं था। खुले मैदानो को ढकते हुए कई-कई मजिली इमारते शान से खडी थीं। पुरानी पहचान के सभी चिह्न गायब थे। लेकिन यहाँ आते ही उसके मस्तिष्क मे एक पुरानी पहचान ताजी हो उठी थी। उसके मानस-पटल पर सब-कुछ चलचित्र की भाँति घूमने लगा।

तब उसने चौदह वष पूरे करक पन्द्रहव वष म प्रवेश किया था। उसका जन्मदिन मनाकर 'अब तुम काफी बडे हो गए हो, नाइथ क्लास मे' टिप्पणी के साथ पिता ने उसे इस शहर म पढने के लिए भेजा था जहाँ वह अपने एक

दूर के सम्बन्धी के यहाँ दो वर्ष रहा था दसवीं कक्षा पास करने तक। उसके कस्बे में किसी अच्छे स्कूल का अभाव था तथा माता-पिता की महत्त्वाकांक्षाएँ उसे एक बड़ा आदमी बनाने की थीं। अब पिता नहीं रहे, माँ भी नहीं रहीं, पर उसे एक अच्छे पद पर नौकरी करते वे अपनी आँखों से देख चुके थे और उनका उसे बड़ा आदमी बनाने का स्वप्न पूरा हो चुका था।

उस शहर में कदम रखते ही पच्चीस वर्ष पुराने दिनों में लौट जाना उसके लिए जितना स्वाभाविक था उतना ही असुविधाजनक भी। उसने डरते-डरते अपने हृदय के भीतर झाँका तो उसे एक अल्हड़ बालक खुले मैदानों में छलाँग लगाता नजर आया।

खेलकर जब वह लौटता तो अपनी किताबों की अलमारी के आगे आकर खड़ा हो जाता। अभी वह वहाँ नया-नया आया था और उस घर में अजनबी महसूस करता था। हमेशा नजर झुकाए हुए वह संकोच में डूबा रहता। प्यास लगती तो पानी न माँग पाता। खाने की मेज पर सबके बीच बैठकर खाना खाते हुए वह बड़ा अटपटा महसूस करता और केवल जरूरत-भर खा वह वहाँ से उठने की जल्दबाजी में रहता। 'सब' में था ही कौन, उसकी दूर के रिश्ते की आंटी और उसकी हमउम्र आंटी की बेटी लाली। अंकल बिजनेस के सिलसिले में प्रायः शहर से बाहर ही रहते थे। अंगूरों, आमों और अमरूदों के पेड़ों से घिरा हुआ वह छोटा-सा बँगला रईसी का द्योतक बना शान से खड़ा था जिसके एक छोटे-से कमरे में उसकी नन्हीं दुनिया साँस लेने लगी थी। स्कूल की पुस्तकों से निबटकर वह एनिड ब्लाइटन के उपन्यासों और हार्डी ब्वाएज में खो जाता। लाली की अपनी सहेलियाँ थीं और उसके अपने दोस्त। वह घर के सामनेवाले ग्राउंड में अपने दोस्तों के साथ शाम को फुटबॉल खेलता, लाली सहेलियों से बतियाती या रेडियो सुनती और लाली की मम्मी चबूतरे की रेलिंग से लगकर आसमान देखा करतीं। उसे आसमान देखती आंटी न जाने क्या उदास लगतीं। उसने माँ को यूँ कभी रेलिंग पर खड़े होकर आसमान तकते नहीं देखा था। माँ उदास थीं या नहीं, उसे इस बात का कभी खयाल नहीं आया था। परंतु आंटी को देखकर जैसे उसे उदासी का अर्थ पता चला था। खाने की मेज पर आंटी हँसती रहतीं और नित नई बातों से उन्हें हँसाती रहतीं परन्तु उसे फिर भी लगता कि आंटी की यह हँसी छद्म है, उसे और लाली को बहलाने के लिए। लाली बहल जाती, लेकिन वह

प्लेट मे चम्मच बजने से भी सहम जाता। उसे लगता वह अब लाली जितना छोटा नहा है। उसे अब सुख और दु ख समझ म आने लगा है और यह समझ उसे आटी के आसमान देखने ने दी है।

वह सर्दियो की एक रात थी। बाथरूम के आगे से होकर वह अपने कमरे म आ रहा था कि भीतर स आती हुई धडाधड पडते पानी को आवाज और गुनगुनाने के स्वर ने उसके पाँव ठिठका दिए। सर्दी हो गर्मी हो या बरसात हो, आटी नियम से रात को सोने से पूर्व अवश्य नहाती थीं। आटी का नहाना भी आम नहाने जैसा नहीं था। सारे काम से निबटकर जब वह गुसलखाने म घुसतीं तो उनके बाहर निकलने तक वह ओर लाली सो चुके होते। उसे आटी के आसमान देखने की भाँति ही उनका नहाना भी उदासी का प्रतीक लगता, जैसे वक्त को किसी तरह आगे धकेल रही हा। जिस काम मे जितना अधिक समय लग सकने की गुजाइश होती, उतना अधिक समय वह अवश्य लगातीं। नल की धार जो एक बार गिरनी शुरु होती तो समय का खयाल किए बिना आटी के गुनगुनाने म सगत का काम करती रहती। वह नींद आने तक सोचा करता—कितनी बार भी शरीर पर साबुन लगाया जाए, फिर भी इतनी देर तो नहाने म नहीं लग सकती।

यह प्रश्न ही वह वजह थी कि उसके पाँव गुसलखाने के दरवाजे के आगे ठिठक गए थे। उसे जैसे कुछ न सूझा, और वह दरवाजे की एक दरार से आँखे जोडकर खडा हो गया। लेकिन जिस तत्परता से उसने आँखे दरार से लगाई थीं उसी तत्परता से हटा लीं। वह एकाएक भयभीत हो उठा जैसे किसी ने उसे चोरी करते देख लिया हो। नहीं-नहीं कही कोई भी तो नहीं था। लाली सम्भवत सो चुकी थी। उसे लगा, वह व्यर्थ मे ही डर गया है। पर एक कम्पन अभी भी उसके हृदय को झकझोर रहा था। वह परेशान-सा एक गहन आश्चर्य मे डूब-उतरा रहा था। बाथरूम के बद दरवाजे ने जैसे उसके ज्ञान का एक नया द्वार खोल दिया था। उसने कभी नहीं जाना था कि कपडो मे लिपटी रहनेवाली आटी वस्तुत इस कदर गोरी और मासल होगी और उनके उस गोरेपन और मासलता म इतने कटाव और उभार हागे। उन्हे उस रूप म बार-बार देखने की तडप भरकर वह फिर साँस रोककर भीतर झाँकने लगा। भीतर एक नई ही दुनिया थी—उसकी सोच और कल्पना से परे। आटी नृत्य की विभिन्न मुद्राआ मे हिल रही थीं। एकबारगी तो उसे वह विक्षिप्त लगीं।

उसने अपने कस्बे मे एक औरत के सिर पर नवरात्रो के दिना म देवी आने की बात सुनी थी, एक बार देखी भी थी। आटी का यह रूप उसे देवी आने जैसा ही कुछ लगा, या हर रात उन्हे पागलपन का एक दौरा-सा उठा करता है—यह बाते सोचते हुए भी यह सब-कुछ उसकी समझ से बाहर था, फिर भी उसके मन को रमाते हुए, उसके मन म अनेक-अनेक जिज्ञासाएँ जगाते हुए यह सब-कुछ उसे बेहद आतकित कर गया था।

वह उस रात सो न सका। उसे रह-रहकर खीझ उठती थी। वह पढाई-लिखाई म बहुत होशियार था, परीक्षा मे हमेशा ही अच्छे नम्बर प्राप्त करता था। उसकी क्लास के उसकी उम्र के अन्य लडका की अपेक्षा उसका सामान्य ज्ञान भी अधिक था जिसके परिणामस्वरूप वह कई पुरस्कार जीत चुका था फिर भी उसे क्यों कुछ समझ म नहीं आ रहा था? यहाँ आकर क्यो उसकी बुद्धि पस्त पड गई थी? उसे स्वय पर एक बेमतलब का क्रोध आया—वह इतना छोटा क्यो है? वह जल्दी से जल्दी बडा होना चाहता है, आटी जितना बडा।

उसके बाद वह प्रतिदिन रात होने की प्रतीक्षा किया करता। रात होने पर गुसलखाने क दरवाज की दरार स आटी का खल देखा करता और बिस्तर म आने पर अपने जल्दी से जल्दी बडा होने की कामना किया करता। तभी एक दिन इस कामना करन के दौरान उसन अपने शरीर म एक भयकर तनाव महसूस किया। उसे लगा, उसका शरीर अकडता जा रहा है और उसने खुद को ढीला करने के प्रयास मे घबराकर आटी की ही तरह एक खेल खेल डाला। वह आश्चर्यचकित रह गया—उसके अपने भीतर जैसे एक खजाना भरा हुआ था जिसमे से वह जब चाहे मोती चुन सकता था। इससे भी अधिक आश्चय की बात उसके लिए यह थी कि अनगिनत मोती खर्च करने पर भी उसका कोष रीतता नहीं था जैसे एक जादू था जो बर्तन के खाली होते ही उसे फिर लबालब भर देता था।

धीरे-धीरे उसम एक आत्मविश्वास ने जन्म लिया और वह खाने की मेज पर मुखर होने लगा। अब वह बिना झिझक लाली के साथ कैरम और लूडो खेलता और आटी के साथ किचन म खडा होकर अपने स्कूल की बात बताता। उसे आटी के साथ खडे हुए यह देखकर अच्छा लगता कि वह आटी जितना ही लम्बा है। आटी का शरीर गठा हुआ था और उसे उनकी जो चीज सबसे अधिक आकर्षित करती थी वह थी उनके लो-कट ब्लाउज से झाँकती

एक लकीर जिसकी एक झलक पाने के लिए वह पूरा-पूरा दिन प्रतीक्षा किया करता। उनकी साडी का पल्लू मुस्तैदी से उनके कधे पर पडा रहता पर उसे लगता जैसे अव गिरा। वह अपनी खिडकी से घटा एकटक घर के काम मे व्यस्त आटी को देखा करता और उसे अपने भीतर कुछ खुलता हुआ-सा महसूस होता। खुशबू फूला मे ही नहीं, आवाज म भी होती है—यह अहसास उसे उनकी आवाज़ सुनकर ही हुआ था। वह अपने इन नए अहसासा को बॉंटना चाहता था—किसके साथ ? लाली के साथ ? नहीं-नहीं, वह उसे बहुत छोटी लगती, उसकी हमउम्र होने पर भी एकदम बच्ची लगती, मानो वह अब बडा हो गया था। तो क्या आटी के साथ ? नहीं-नहीं, आटी का होना ही उसे एक सुखभरे आतक से भर गया था। उनके साथ अपने अहसासा को बॉंटने की बात करना उस आतक म विस्फोट पैदा करना था। 'सोचने' पर उसका नियन्त्रण नहीं था, 'सोचना' किसी को दिखता नहीं था पर जाहिरा तौर पर कुछ भी स्वीकार करना नहीं-नहीं, उसे लगता, वह पाप हो जाएगा। पुस्तको म पढा पाप और पुण्य उसे जैसे अब समझ म आया था। उसका 'सोचना' यदि कभी मुखर हुआ तो वह है पाप, और अपनी खुशी को अपने हृदय के भीतर छुपाए रखना, यह है पुण्य—ऐसा वह महसूस करता। उसे लगता आटी, वह पहली और एकमात्र औरत है जिन्ह उसने पूरी तरह देखा है, इसलिए वह उन्ह पूरी तरह जानता है और इसीलिए वह उनके सबसे ज्यादा नज़दीक है। उसे आटी प्राय देवी लगतीं। परीक्षा के दिनो म उसने भगवान से कहा था—'हे भगवान। यदि आटी मुझे सचमुच अच्छी लगती हैं तो तू मुझे पास कर दे' और वह पास हो गया था। यहॉं तक कि लाली के साथ सॉंप-सीढी खेलते हुए भी वह जीतने के लिए भगवान के साथ यही शर्त रखा करता और वह जीत जाता। उसे लगता आटी सचमुच देवी है। वह मन ही मन उस देवी की पूजा करने लगा।

वह सर्दियो की एक गीली सुबह थी। लाली स्कूल जा चुकी थी। उसके स्कूल की छुट्टी थी। आटी ने उसे जोर से पुकारा था। वह भागा-भागा उनके कमरे म आया था, लेकिन दरवाजे पर ही ठिठक गया था। आटी कधे पर तौलिया रखे खडी थीं।

उसने देखा था—लो-कट ब्लाउज से झॉंकती लकीर अब गायब थी। आटी हिलती तो तौलिया हिलने लगता जैसे दो कबूतर फडफडा रहे हो।

'तू इन कपडा को समेटकर रख दे।' आदेश के साथ आटी नहाने चली गई थीं। उसन आटी की साडी की तह लगाई थी। फिर वह उस अपनी नाक तक ले गया था। एक अनजानी खुशबू स उसक नथुन भर गए थे। फिर उसन उस अपने गल म लपट लिया था और उस लगा था उसका सम्पूण व्यक्तित्व उस खुशबू से सुगंधित हो उठा है। कपडा को तह कर अलमारी म रखने के बाद वह उस गध को अपने भीतर समेटता हुआ कितनी दर खडा रहा—उसे पता न चला। वह अचानक चौंका आटी की आवाज सुनकर 'तू क्या सोच रहा है ?'

उसने देखा—गीले बाला को पीठ पर छितराए हुए आटी उसी तरह फडफडाते हुए कबूतरो को तालिय म समेट दरवाज म खडी थीं। वह पसोपेश म पडा जमीन की ओर देखने लगा। आटी सीधे जाकर शीशे की मेज के सामने रखे स्टूल पर बेठ गइ। गीले बाला से झरकर अनक मोती उनकी पीठ पर जडे हुए थे। वह कहना चाहता था—इतनी सर्दी म आप नहाई क्या ? पर उससे कहा न गया। वह अपने कमरे म जाने के लिए मुड गया।

'ज़रा ढूँढ तो, लाली ने कघा कहाँ रख दिया ?' आटी की आवाज ने उसे रोक लिया। अब उसक सम्मुख पनील मातिया स जडी हुइ सगमरमरी पीठ थी और मन म दहशत-भरा सुख।

'तू क्या सोच रहा है ?' आटी ने हँसकर पूछा और बाला को दोना हाथों से झटकारने लगीं।

उसे खुद नहीं पता चला कि वह क्या सोच रहा है। उसके सामने से जैसे सब गायब हो गया। केवल मछली की आँख-सी सगमरमर की दीवार उसके सामने थी, जिसे वह छूना चाहता था उस पर बिखर हुए मोतिया को अपने हाथा से समेटकर कहीं छुपा देना चाहता था।

'इधर आ,' आटी ने उसकी ओर हाथ फैला दिया।

वह धीमे से जाकर स्टूल के नजदीक बैठ गया।

'आज तू बहुत चुप है। लाली ने कुछ कहा क्या ?'

'नही तो।' कहकर वह फिर चुप जमीन की ओर ताकन लगा।

'अच्छा एक बात बता यहाँ तू खुश तो है ना ?'

क्या आटी उसका मन बहलाने के लिए ऐसा पूछ रही है ? उसने उनकी ओर देखा बाल सटकारना बद करके अब वह अपना चेहरा सँवार रही थीं।

'हाँ।'

'फिर तू इतना चुप क्यो रहता है ?'

वह क्यो ऐसा पूछ रही हैं ? उसे लगता है, वह कोई जवाब नहीं दे पाएगा।

'नहीं तो!' उसने बडी कठिनाई से कहा और चाहा कि अब वह ऐसा कुछ न पूछ। उसकी चुप्पी का कारण उसे खुद नहीं मालूम था और उनके ऐसे प्रश्न से वह आवश्यकता से अधिक घबराया हुआ महसूस कर रहा था। उसने सिर ऊपर उठाया, आटी के गोरे चेहरे पर गोल बडी लाल बिंदी हावी थी। उसके चारो ओर बिंदी की लालिमा फैल गई। उसने हल्के-से उनके पाँवो को छूना चाहा लेकिन उसके हाथ कसकर उनके पाँवो से चिपक गए और वह स्टूल पर सिर टिकाकर सुबकने लगा।

'घर की याद आ रही है ? पगला कहीं का!' कहते हुए आटी ने उसे अपनी बाँहो मे भर लिया। देर तक वह उसे अपने से चिपटाए रहीं और वह बिना आवाज किए सुबकता रहा। तभी उसने गौर किया, तौलिया पता नहीं कब उनके कधे से फिसल गया और उसका सिर सर्द सगमरमरी पहाडियो मे पनाह ले रहा है। वह खामोशी से उनसे अलग हुआ और तेज चाल से अपने कमरे मे पहुँचकर बिस्तर पर ढेर हो गया।

ठीक आठ बजे वे लोग खाना खाते थे। आटी समय की पाबद थीं, साथ ही अनुशासनप्रिय। लेकिन सब-कुछ ऐसी सहज गति से चलता था कि उसने लाली को कभी उनसे भय खाते नहीं देखा था। पर आज उसके मन मे यह कैसा भय पनप रहा था ? आठ बजाकर सुई आगे खिसक चुकी थी लेकिन वह जड बना अपने कमरे मे बैठा था। क्यो नहीं वह उसका खाना उसके कमरे म भिजवा देतीं ? उसे लगा, उसकी यह इच्छापूर्ति असभव है। जैसे उन्होने हर काम का समय निर्धारित किया हुआ था, वैसे ही हर चीज की जगह भी निश्चित थी। भोजन खाने के कमरे मे खाने की मेज पर ही होगा, अन्यत्र नहीं। उसे अपने घर की याद आई—कैसे वह खाने की थाली उठाकर प्राय छज्जे म आ जाया करता था और खाते-खाते नीचे दालान मे झाँका करता था। सर्दियो मे उसका भोजन कभी-कभी बिस्तर पर भी हो जाता था। जिस तरह भोजन करने की कोई निश्चित जगह उनके घर मे नहीं थी, उसी तरह निश्चित समय भी नहीं था। कभी-कभी वह साय घिरते ही 'खाना-खाना' चिल्लाने लगता कभी देर रात तक उसे भूख न लगती और माँ के बार-बार कहने पर

भी वह इनकार करता रहता।

यहाँ आकर उसे एक ही वक्त और एक ही स्थान पर भोजन करने की आदत पड गई थी। पर आज उसकी भूख कहाँ गायब हो गई थी ? उसे अपने शरीर की सारी ताकत चुक गई लगी और वह अपनी जगह से हिल न पाया कि तभी उसने देखा—लाली नीले फूलो की फ्रॉक पहने, सिर पर नीले रग का ही स्कार्फ बाँध उसके कमरे मे खडी है।

'चल, खाना खा ले। क्या तुझे आज भूख नहीं लगी ?' लाली ने कहकर जैसे सचमुच उसे न खाने की वजह सुझा दी थी। हाँ, उसे भूख नहीं लगी, उसका मन हुआ, वह यही कह दे। वह अभी कुछ बोलने के लिए मुँह खोलने ही वाला था कि लाली ने दोबारा कहा—'जल्दी चल मुझे जबरदस्त भूख लगी है।' और वह कुछ सोचे बिना उठकर लाली के साथ चल दिया। डाइनिंग टेबल पर आटी अन्य दिनो की भाँति चहचहाती रहीं लाली बात-बात पर हँसती रही, लेकिन वह मुँह लटकाए सुबह की घटना को मन मे दोहराता रहा। वह अचम्भित था आटी की तो किसी भी बात से नहीं लग रहा जैसे सुबह कुछ हुआ हो। तो क्या सुबह कुछ नहीं हुआ था ? क्या वह सब-कुछ कुछ नहीं था ? यदि नहीं था तो वह क्यो इतना अस्त-व्यस्त हो उठा है ? और यदि था तो क्या आटी उस सब से बेअसर छूट गई हैं ? हो सकता है उन्होने किसी बात की ओर ध्यान ही न दिया हो। यह तो वही पागल है जो जरा-जरा-सी बात को लेकर सजग हो उठता है। गलती उसी की है। वह स्वय को कोसने लगा और एक भीषण पाप की भावना से भर उठा।

जल्दी-जल्दी खाना खत्म कर वाशबेसिन पर हाथ धो जब वह निकलने को हुआ तो उसने देखा—आटी हथेली पर इलायची रखे उसके सामने खडी हैं। उनके होठो पर मुस्कराहट थी, उसे सम्मोहित करती हुई। एक इलायची उठाकर उन्होने उसके मुँह मे डाल दी और उसके गाल पर चिकोटी काटती हुई बोली थीं—'बुद्धू कहीं का।' फिर उन्होने उसे और लाली को हिदायत दी थी—'कोई दस बजे से पहले न सोए। जाओ, जाकर सीरियस्ली पढाई करो।'

दस बजे के बाद भी वह कहाँ सो पाया था ? उसकी किताब के पन्नो पर जब-तब आटी आकर मुस्कराने लगतीं और 'बुद्धू कहीं का' कहकर ओझल हो जातीं। उसे खुद पता न चला कि कब वह पुस्तक पकडे-पकडे सपनो की दुनिया मे खो गया है।

एक बहुत ऊँचा पहाड है सलेटी रग का शायद रेत का, जिसकी चोटी पर आटी खडी हैं। उनकी साडी का पल्लू हवा म लहरा रहा है। उनके होठो पर खिलखिलाती हुई हँसी है और वह उसे हाथ हिला-हिलाकर बुला रही हैं। वह पहाड पर सावधानी से चढने लगता है। बार-बार उसके पैर रेत मे धँस जाते हैं और वह बडी कठिनाई से अगला कदम बढा पाता है। वह प्रसन्न है कि वह धीरे-धीरे ऊपर पहुँच रहा है। केवल कुछ पग और चढकर वह उनका हिलता हुआ हाथ थाम लेगा। पर उसके ऊपर पहुँचते ही एकाएक उसका पाँव फिसल गया है और रेत का पहाड भुरभुराकर गिर गया है।

एक बहुत ऊँची इमारत है जिसकी ऊँचाई और घुमावदार सीढियाँ उसे कुतुबमीनार की याद दिलाती हैं। बडे उत्साह से वह एक-एक सीढी ऊपर चढ रहा है। अतिम सीढी पर पहुँचकर वह देखता है कि एक दरवाजा है जो बद है, जिसके बाहर ताला पडा हुआ है। अब वह कहाँ जाए? वह हतोत्साहित हो उठता है, थकान से उसकी जान निकल रही है। निराश मन से वापस नीचे उतरने के लिए वह मुडता है तो पाता है कि उसकी टाँगो की शक्ति समाप्त हो गई है। वह घुटनो पर हाथ रखकर एक-एक सीढी उतरने लगता है, एकदम थका हुआ, बुझा हुआ टूटा हुआ।

अकल अचानक आ गए थे। वह ऐसे ही बीच ही बीच मे अचानक आ जाते थे और अचानक चले जाते थे। उनकी वहाँ ठहरने की अवधि एकाध दिन से अधिक नहीं होती थी। लेकिन उस एकाध दिन म ही घर का जैसे हुलिया बदल जाता था।

'बच्चे कहाँ हैं?' उन्होने आते ही पूछा था और उसे तथा लाली को सामने पाकर लाड से लिपट गए थे।

'बच्चे तो आप ऐसे कह रहे हैं जैसे हमारे दर्जनो बच्चे हो।' आटी ने उलाहना-भरे स्वर मे कहा और किसी न किसी आयोजन मे जुट गई थीं।

उसे अकल मेहमान लगते जिनके लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के भोजन बनाए जाते, अनिवार्य रूप से बिस्तर की चादर बदली जातीं, फूलदानो मे ताजे फूल लगाए जाते और पूरे घर की जमकर झाड-पोछ की जाती। अकल के होते हुए घर मे एक अजीब-सी चहल-पहल रहती। आटी को न रेलिंग पर खडे होकर आसमान देखने की फुर्सत रहती न घटो बाथरूम मे बद होने की।

उस दिन खाने की मेज़ पर भी महफिल अधिक देर तक न जमती, न ही उस और लाली को ज्यादा हिदायत मिलतीं। सब मिलाकर वह एक खुशनुमा दिन होता।

उस दिन अकल के आ जाने से वह कुछ सात्वना जैसी महसूस कर रहा था जैसे उन्होने उसकी उच्छृखलता से बहती विचार-शृखला की लगाम पकड ली हो। उसने मन ही मन अकल को कोटिश धन्यवाद दिया था जिनके आगमन मात्र से उसे एक पाप-भावना से मुक्ति मिल गई थी। उस स्वय पर हँसी आई, वह कैसे-कैसे भ्रमजाल म फँस जाता है। उसने अकल से अपनी तुलना की—कहाँ अकल और कहाँ वह। वह तो उनके सामने पिदना-भर है, फिर उसकी यह मजाल कि वह चीजो के अर्थ बिगाड दे।

अचानक रात को उसके कमरे का दरवाजा खडका था। आटी—उसे यही लगा कि आटी होगी। उसने शीघ्रता से दरवाजा खोला था तो पाया था कि सर्दी म ठिठुरती हुई लाली बाहर खडी है।

'लाली तुम ? क्या हुआ ?'

उसके पूछने के साथ ही लाली भीतर आ गई थी और उसने बाहर से आती हुई सर्द हवा से बचने के लिए दरवाजा उढका दिया था।

'मम्मी और पापा अपने कमरे मे लड रहे हैं।' लाली धीमे स्वर मे रुआँसी होकर बोली।

आटी-अकल लड रहे हैं। उसे जैसे विश्वास न हुआ—'तू झूठ कहती है।'

'तू चलकर खुद सुन ले। पापा जब भी आते हैं रात को दोनो इसी तरह लडते है। उन्हे जोर से बोलते सुनकर मुझे डर लगता है।' लाली ने कहा तो उसने उसका हाथ पकड लिया और बडो की भाँति दिलासा देते हुए बोला 'तू डर नहीं। डरने की भला इसमे क्या बात है ?'

अब वे दोनो एक-दूसरे का हाथ पकडे हुए उनके कमरे के पास एक ओट मे दुबके खडे थे। आवाज का कोई टुकडा जैसे उछलकर बाहर आता वे उसे लपक लेते।

पैसा ही सब-कुछ।
कभी सोचा है ?
साला एक दिन।

झगडा।

इतने दिन अकेले।

मर जाऊँगी।

भाड म।

वहाँ कोई।

इतना पैसा है।

चार-चार।

साला घर।

दिल का खयाल।

आते ही बस एक चीज।

चुप पडी रहो।

सिसकियाँ। केवल सिसकियाँ।

उसका मन एक गहरी उदासी से भर आया, और वह न जाने कौन-सी दुनिया म खो गया।

'सुन लिया ना? तू मुझे झूठ समझ रहा था।' लाली ने कहा तो वह वर्तमान मे लौट आया। लाली की आवाज अभी भी काँप रही थी। वह उसे उसके कमरे म छोडता हुए बोला—'तू डर नहीं, डरने की इसमे क्या बात है? तू उनकी बाता की तरफ ध्यान मत दे और सो जा।'

उसके उपदेश पर लाली ने उसे घूरकर देखा ओर फिर अपने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया।

लेकिन उसका खुद का ध्यान सबसे अधिक अब उन्हीं के कमरे की ओर था। वह भारी मन लिये अपने बिस्तर पर जा लेटा। आवाजा के टुकडे उस तक पहुँचने बद हो गए थे, पर उसके मन की एक आवाज मुखर होने के कारण तिलमिला रही थी—आटी आटी मत रोओ, आटी मैं तुमसे प्यार करता हूँ, आटी तुम मत रोओ ।'

अकल जैसे अचानक आए थे वैसे ही अचानक चले गए थे। उनके जाने के वक्त सब-कुछ खुशगवार था और कहीं कुछ ऐसा नहीं था जो बीती हुई रात की स्थिति की पुष्टि करता हा। आटी उसी तरह चहचहाती हुई आयोजनो म व्यस्त थीं और अकल ने उसी तरह लाड से उसे और लाली को अपने से

लिपटाया था। तो क्या रात को उसने स्वप्न देखा था ? क्या वह मात्र उसका भ्रम था ? लेकिन लाली की आँखों मे अभी भी रातवाले डर की छाया थी। अकल के जाने तक जितनी बार भी लाली ने उसकी ओर देखा था रात वली बात को ही बेआवाज़ उस तक पहुँचाया था। आवाज़ मे तो वह उससे बोली थी—'तू कभी यहाँ से जाएगा तो नहीं ? हमेशा यहीं रहेगा ना ?'

क्या यह उसके बस का था कि हमेशा वहीं रहता ? लगभग दो साल बीत चुके थे। आगे की पढाई के लिए वह किसी हॉस्टल मे जाएगा। उसे अभी ख़ुद कुछ मालूम नहीं था कि दसवीं पास करने के बाद कहाँ पढेगा। जब उसने लाली को यह सब बताया तो लाली सपने देखती हुई बोली—'मै भी हॉस्टल मे पढूँगी। वहाँ मेरी ढेर सारी सहेलियाँ होगी। यहाँ मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता।'

वह हैरान रह गया—'क्यो, यहाँ तुझे कुछ अच्छा क्यो नहा लगता ? क्या तू आटी को अकेली छोड देना चाहती है ?'

'तेरी आटी को अकेले रहने की आदत है।' लाली ने ऐसे कहा जैसे आटी उसकी कुछ न लगती हो।

वह मौन रहा। लाली फिर उसका हाथ पकडकर उसे खींचती हुई बोली, 'चल, बाग मे चलते हैं। कच्चे अमरूद तोडकर खाएँगे। मुझे अच्छे लगते हैं। तुझे अच्छे लगते है ?'

वे दोना घर के पिछवाडे लगे अमरूदो के पेडा के पास पहुँच गए थे।

'मैं तुझे कैसी लगती हूँ ?' लाली के पूछने से वह अमरूद खाते-खाते अचानक चौंक गया।

'तू मुझे एकदम खराब लगती है।' वह फुर्ती से बोला।

'तूऽऽ' कहकर लाली रूठने के अदाज म पीठ फेरकर खडी हो गई। उसने लाली को अपनी ओर घुमाया ओर उसे चिढाते हुए बोला—'तेरा सिर्फ रग गोरा हे, तुझमे और क्या अच्छी बात है बता ?'

तभी उन्हे वहाँ किसी और की उपस्थिति का भान हुआ। हल्की-सी सिसकने की आवाज उनके कानो मे पडी थी ओर वे उस आवाज को ढूँढने के लिए इधर-उधर नजर दौडाने लगे थे। आवाज का पीछा करते हुए वे आहिस्ता-आहिस्ता चलने लगे।

'अरे ! यह तो आटी हैं।' वह चौंक पडा। आटी बाग के एक कोने मे पेड के मोटे तने के पीछे छुपी बैठी थीं। वे दोनो उन्हे चौंकाते हुए उनके

सामने जा पहुँचे। उन्होने झट-से साडी के पल्लू से अपने आँसू पोछे और अन्यमनस्क हो उठीं। लाली पानी लाने के लिए दौड गई। वह पीडा का भाव आँखो मे लिये उनके समीप बैठ गया।

उसने कहना चाहा—आटी, मत रोओ। लेकिन उसके मुँह से एक शब्द न निकला और वह मौन उनकी आँसुआ से धुली आँखा म झाँकने लगा।

'तू क्या दु खी होता है ? मैं तो खुश हूँ।' उन्हाने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए वही चिर-परिचित मुस्कान होठो पर ओढ ली।

वह कहना चाहता था कि वह सब-कुछ जानता है रात को उनके कमरे के बाहर खडे होकर उसने उनकी और अकल की लडाई की आवाजे सुनी हैं। लेकिन यह कहना जैसे जुर्म का इकबाल करना था। उससे कुछ कहते न बना। वह सिर्फ *आटी* कहकर रह गया।

'तेरी आटी अगर मर गई तो क्या तुझे दु ख होगा ?' उन्होने कहकर जैसे उसकी दुखती रग को छू दिया था।

'मै भी मर जाऊँगा।' जिस तेजी से उसके मुँह से निकला, वह खुद हैरान रह गया।

'पागल कहीं का!' कहकर उन्होंने उसे अपने मे लपेट लिया और आँसू फिर उनकी आँखा से निकलकर उसके कधे को भिगोने लगे। वह अपने हाथो से उनके आँसू पोछने लगा। वह यूँही उसे अपने मे भरकर रोती रहीं।

'मम्मी, पानी पी लो!' लाली पानी का गिलास ले आई थी। उन्हे पानी पिलाकर वे दोनो भीतर ले गए थे और ले-जाकर बिस्तर पर लिटा दिया था।

'जाओ बेटे, तुम दोना जाकर पढो।' उन्होने कहा था।

लाली तो अपने कमरे मे चली गई लेकिन वह बिस्तर पर बैठकर उनका सिर दबाने लगा।

उसके मन म कुछ घुमड रहा था। उसका दिल किया वह रो ले, पर उससे रोया न गया।

'बस, अब रहने दे। तू थक जाएगा।' आटी ने अपने माथे पर उसके हाथ पकड लिये थे।

उसे रह-रहकर अकल पर क्रोध आने लगा। वह वहाँ से उठकर लाली के पास चला आया।

'तू मम्मी के रोने से दु खी हो गया है ना ?' लाली उससे पूछ रही थी।

'क्या तू नहीं हुई ?' उसने पलटकर उसी से पूछा।

'तू यहाँ से अभी जाएगा तो नहीं?' लाली एकाएक उससे लिपटकर सुबक उठी। वह उसे अपनी बाँहों में घेरे खड़ा रहा।

'तू मुझे बहुत अच्छा लगता है।' लाली उसके वक्ष पर सिर रखे कह रही थी।

उसके कानों में कहीं आंटी की सिसकियाँ गूँज रही थीं, 'अगर तेरी आंटी मर गई तो' ' 'नहीं-नहीं आंटी, मैं तुम्हें मरने नहीं दूँगा ' उसने तेजी से अपने को लाली से अलग किया और अपने कमरे में जा गुमसुम-सा दीवार निहारने लगा।

उसके वहाँ से वापस जाने का दिन आ पहुँचा था। उसके पिता उसे लेने आए थे। लाली बार-बार एक ही बात दोहरा रही थी—'क्या तू सचमुच चला जाएगा?'

आंटी ने उसके माथे को चूमते हुए कहा था—'आंटी के लिए दुःखी मत होना तेरी आंटी नहीं मरेगी।'

उसने लाली से पत्र लिखने का वादा किया था और बहुत शक्ति बटोरकर आंटी से कहा था—'रोना मत आंटी' और कहकर खुद रो पड़ा था।

'बड़ा भावुक है।' पिता का कहना उसे गाली-सा लगा था।

आंटी के पाँव छू तथा लाली को हाथ हिला उसने उस घर से विदा ले ली थी।

आज वह यह सब याद करके स्वयं चकित है। उसकी हमउम्र लाली क्या सचमुच उससे प्यार करने लगी थी? आंटी, जो उसे बाद में पता चला कि उससे उम्र में बाईस वर्ष बड़ी थीं, क्या उनकी अनुभवी आँखों ने उसके मन की हलचलों को पढ़ लिया था? और वह? वह कहाँ था? कौन-सी प्रेरणा से तर्कातीत संवेदनों को झेल रहा था? इस शहर के बदले हुए रूप-रंग में कहीं कोई उत्तर नहीं है।

मुक्ति

एमेलीन स्तानेफ

कॉटेज के पास फलों से लदे हुए पेड़ों का बाग था। कर्नल को फलों का बहुत वहम रहता। कस्बे में लोग भूखों मर रहे थे। कुछ बंदी भी फल चुराने के लिए ताक में रहते। उसे हर समय फलों की चोरी की आशंका रहती। बाग की रक्षा के लिए कर्नल ने एक घंटी लगा रखी थी। जैसे ही कोई बाग का पेड़ हिलता, दूर एक पेड़ के साथ रस्सी से बंधी घंटी बजने लगती। अर्दली तत्काल भागकर जाता ताकि कोई बाग में घुसकर फल चुराकर न ले जाए।

रोज दोपहर को अर्दली पौधों के लिए पानी लेने निकलता। पानी की किल्लत थी। अर्दली को बड़ी दूर से पानी लाना पड़ता। इसमें खासा समय लग जाता। उस समय कर्नल की बीवी लीरा वहाँ अकेली रह जाती।

लीरा अकेली बैठी अपना सारा समय सिलाई या अध्ययन में बिताती थी। वह एक सुंदर स्त्री थी। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में एक अजीब तरह की धुंधभरी उदासी तैरती रहती। कभी-कभी उसके चेहरे पर एक ऐसा भाव उभर आने लगता जो प्रकट करता कि वह एक सुंदर, जवान, मगर दुःखी है।

लीरा अच्छे परिवार से संबंध रखती थी, पर गरीबी ने उसके अहसास को कुचल दिया था। इसीलिए उसने बूढ़े कर्नल से शादी कर ली। पर शादी के बाद जब उसका जीवन बेचैन दिनों और नीरस रातों की करुणापूर्ण कहानी

बन गया और उसकी गोद भी हरी न हुई तो उसने सोचना शुरू कर दिया कि अब उसका जीवन शोख रंगो वाली खुशियो से सदा खाली रहेगा और इसकी जिम्मेदार वह स्वय है, क्योकि उसने जीवन की कुछ झूठी सुविधाओ के लिए अपना सौंदर्य कर्नल के बुढापे के हाथो नीलाम कर दिया था।

दोपहर का वक्त था। बजर और तिडकी हुई जमीन पर पेडो की छाया किसी मातमी झडे की तरह नजर आ रही थी। लीजा बरामदे म बैठी थी। कनल अभी-अभी कॉटेज स गया था। घरलू नौकरानी भी जा चुकी थी। अर्दली रोज की तरह पानी भरने गया हुआ था। लीजा अकेली थी। सहसा उसने घटी बजने की आवाज सुनी। एक बार दूसरी बार, फिर तीसरी बार वह भयभीत-सी हो गई कि दिन-दहाडे यह कौन है, जो कस्बे के कमाडर के बाग मे चोरी करने आ पहुँचा ? उसने सोचा, शायद कोई कुत्ता आ गया होगा। वह बाग की ओर चल दी। पास के मकान मे मास्टरजी ने भी घटी सुनी थी। वह भी उठकर बाग म आ गए कि अगर उनकी जरूरत हो तो वह मदद कर सके। धूप मे लीजा के सुनहरी बाल नए सुनहरी सिक्के की तरह चकमका रहे थे। उसने पीले रग का महीन रेशमी लिबास पहन रखा था। उसकी चाल से उसकी मानसिक व्यग्रता झलक रही थी। मास्टरजी उसके पीछे-पीछे चलते रहे। लीजा बाग मे पेडो के झुड की ओर बढी जा रही थी कि सहसा मास्टरजी ने उसकी हल्की-सी चीख सुनी।

एक युवक युद्धबदी उसके सामने खडा था। उसने अपनी टोपी मे आडू भर रखे थे। उसके फटेहाल लिबास से उसका जिस्म झाँक रहा था। वह चुपचाप लीजा को देखता रहा। फिर उसन बडे आदर से कहा ''मे लज्जित हूँ। भूख के कारण मैं बाग म आ गया।'' उसकी आवाज मधुर और धीमी थी। मास्टरजी ने देखा कि लीजा युद्धबदी से प्रभावित हो रही है।

''तुम भूखे हो ? आओ मेरे साथ।''

युद्धबदी और मास्टरजी चुपचाप उसके पीछे चल दिए। लीजा काटेज के अदर चली गई। वह वापस आई तो उसने एक ट्रे उठा रखी थी। बदी खाना खाते लजा रहा था। लीजा और मास्टरजी उसको अकेला छोडकर कुछ कदम दूर चले गए। लीजा ने मास्टरजी से कहा ''कितनी बुरी हालत है इसकी। हमे इसके लिए कुछ कपडो का प्रबध करना चाहिए।'' मास्टरजी ने मुस्कराकर लीजा की ओर देखा और बोले ''तुम्हारी अनुपस्थिति मे मैं इस युद्धबदी से कुछ बाते कर चुका हूँ। पेशे से वह हमारा भाई है। सेना मे आने से पहले वह

स्कूल मे पढाता था।''

लीजा फिर काटेज के अदर चली गई। कुछ मिनट बाद वह वापस आई तो उसके हाथ म एक पार्सल था। वह बदी के निकट गई ''यह ले लो तुम्हारे काम आएँगे और अगर तुम फिर कभी यहाँ आ सको तो मैं तुम्हारी मदद करूँगी, पर हाँ, यह तुमने अपनी टोपी से फल निकालकर बाहर क्यो रख दिए हैं? इन्हे ले जाओ।''

बदी अपनी चमकदार आँखो से लीजा को देख रहा था। लीजा ने कहा, ''अवश्य आना तुम्हारा नाम क्या है?''

''आइवो ओवरटेना।''

''अच्छा आइवो फिर जरूर आना।''

बदी कुछ सोचता हुआ चला गया, तो लीजा ने मास्टरजी से कहा, ''वायदा करो कि तुम कर्नल को इस युद्धबदी के आने के बारे म कुछ न बताओगे।''

कुछ दिन बाद दोपहर को उसने पाया कि वह अजनबी बदी उसके सामने खडा है, जैसे वह स्वप्नावस्था मे हो। वह मुस्कराई। कुछ लजाते हुए युवक युद्धबदी को अपने पीछे आने का सकेत किया और फिर बोली, ''मै समझी तुम भूल गए होगे।''

''मैं आना चाहता था पर आ न सका।''

वे दोनो एक-दूसरे के सामने चुपचाप खडे हो गए। लीजा किसी अज्ञात विचार से सुर्ख हुई जा रही थी। बदी की आँखो की चमक बढ गई थी।

लीजा ने सहसा कहा, ''जरा प्रतीक्षा करो। मै अभी आई।''

वह काटेज की ओर चल दी। अपने-आप से मन मे बाते करते हुए—क्या मैं पागल हो गई हूँ? मुझे क्या हो गया है? उसे जूते देकर मैं कहूँगी कि वह यहाँ से चला जाए।

बदी जूते देखकर विस्मित रह गया। फिर धीमे स्वर मे कहने लगा, ''धन्यवाद इस कृपा का बहुत धन्यवाद। मैं आपके पति को जानता हूँ। वह कस्बे का कमाडर है। आप बेहद दयालु हैं '' उस एक वाक्य म वह उसके पति की निर्दयता प्रकट कर गया था।

''तुम्हे होशियारी से काम लेना होगा। मै हर समय अकेली नहीं होती हूँ।''

"मैं जानता हूँ।" बंदी ने कहा।

"क्या तुम कुछ खाओगे ?"

"आप बड़ी नेकदिल हैं। मैं इनकार नहीं करूँगा।"

वह भागती हुई काटेज के अंदर गई और जल्दी ही रोटी और मक्खन एक अखबार में लपेटकर बाहर आ गई, "यह लो अब तुम चले जाओ। अर्दली के आने का वक्त हो रहा है।"

वह लीजा का धन्यवाद करके चल दिया। उसकी आँखें उसका पीछा करती रहीं। बाड़ के निकट जाकर उसने हाथ हिलाया। उत्तर में लीजा ने भी हाथ हिला दिया।

दूसरे दिन वह सिलाई की मशीन लेकर बैठ गई। उसने अपनी नौकरानी मारपोला से वायदा किया था कि वह उसकी बच्ची को सिला हुआ फ्राक उपहार में देगी। वह सिलाई में तल्लीन थी। मारपोला उसके पास बैठी थी। तीन बजे अर्दली हमेशा की तरह पानी लेने के लिए चला गया। वह तेजी से मशीन की हत्थी चलाती रही। उसकी कल्पना में बार-बार बंदी की कौतूहलपूर्ण आँखें आ रही थीं। फिर उसने उन आँखों को वास्तविकता बनते हुए देखा। वह चुपके-से बाग में आ चुका था। पेड़ों की टहनियों की आवाज और मुर्दा पत्तों के चरमराने की ध्वनियाँ उसके आगमन की सूचना दे रही थीं। उसका अस्तित्व अंदर से टूटने-फूटने लगा। अंतर्द्वंद्व अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया

अगर उसके पति को इस बंदी के आने-जाने का पता चल गया तो ? उसने मारपोला से बड़े ठिठुरे हुए स्वर में कहा, "शायद बाग में कोई कुत्ता घुस आया है। मैं अभी उसे भगाकर आती हूँ।" वह तेजी से चलती हुई पेड़ों के झुंड की ओर बढ़ी। उसने अपने चेहरे पर परेशानी और चिंता का मुखौटा ओढ़ने का प्रयत्न किया पर एक आकर्षक मुस्कराहट उसके होंठों से चिपकी रही। बंदी उसके सामने खड़ा था। उसके हुलिए में खासा परिवर्तन दिखाई पड़ रहा था—हाथ-पाँव धुले-धुलाए, जैसे वह नहाकर आया हो। उसने मुस्कराते हुए कहा, "मैं फिर आ गया "

कुछ क्षणों तक लीजा को कुछ न सूझा कि क्या बात करे क्या कहे ? फिर बोली, "पर तुम बंदियों के कैंप से किस तरह आ जाते हो ?"

"मुझे एक फ्रांसीसी मेजर की सेवा में नियुक्त किया गया है। वह भी बंदी है पर शराबी है। इस समय वह सो जाता है इसलिए मैं कुछ वक्त

निकाल लेता हूँ। बदी उसे अपने हिस्से की बची-खुची ब्राडी दे देते हे। वह ऐसी हालत से गुजर रहा है कि पिए बिना जिंदा नहीं रह सकता।''

उसने पेड से एक पत्ता तोडा और उसको उँगलियो मे मरोडने लगा। वह कुछ कहना चाहता था, किंतु झिझक रहा था। फिर वह लजाते हुए बोला, ''मै मैं आपको तग तो नहीं कर रहा ?''

''नहीं, ऐसी कोई बात नहीं।''

''आज मैं तीसरी बार यहाँ आया हूँ और यह आखिरी बार नहा है। आज मैं खुराक लेने नहीं, आपसे मिलने आया हूँ।''

लीजा ने महसूस किया कि उसके कपोल रक्तिम हुए जा रहे हे। उसने अपने मनोभावो को छुपाने का प्रयत्न किया, पर असफल रही। वह चाहती थी कि बदी को न देखे, पर उसकी नजरे बार-बार उठती थीं और उसे देख लेती थीं।

''युद्धबदी का जीवन बडा कष्टप्रद होता है। मै पहले उकता जाया करता था, पर अब तुम्हारे बारे मे सोचता रहता हूँ। अब कैद इतनी बुरी नही लगती। तुम्हारे कारण एक बार फिर जीवन पर विश्वास हो गया हे।''

वह चुपचाप सुनती रही। फिर कहने लगी, ''पर मैं तो तुम्हारे बारे मे कुछ भी नहीं जानती।''

''मैं एक युद्धबदी हूँ, इससे अधिक मेरे बारे म और कुछ जानने की कोई जरूरत बाकी रह जाती है ?''

''क्या तुम विवाहित हो ?''

वह मुस्कराया और 'न' म सिर हिला दिया। लीजा बेचैन हो रही थी, ''अब मैं चलती हूँ।''

बदी ने उसका हाथ थाम लिया "क्या तुम सचमुच जा रही हो ?''

''हाँ।''

बदी ने उसका दूसरा हाथ भी थाम लिया। एक विद्युत्-तरग लीजा क सारे शरीर मे दौड गई। युवक बदी ने उसे थोडा-सा अपनी ओर खींचा, फिर उसके काँपते हुए खुश्क और गर्म हाठा ने उसे चूम लिया। लीजा ने अपने काँपते हुए अस्तित्व को उससे अलग किया और भागने लगी। वह भय लज्जा और सनसनी से जल रही थी। उसने पीछे से आता बदी का स्वर सुना, ''मैं कल आऊँगा।''

अब वह हर दोपहर को बदी की प्रतीक्षा करती। नींबू के पेडा के झुड

के नीचे ये रोज मिलते। एक-एक क्षण एक-दूसरे के सामीप्य म बिताते। लीजा के हृदय म बदी का प्रेम आत्मा तक म उतर गया। अब उसका शरीर सवेदनशील हो गया था। वह हर सनसनी को बडी नफासत से महसूस करने लगी।

नौकरानी मारपोला ने एक दिन लीजा से कहा "आजकल आप जवान लडकी की तरह नजर आती हैं।"

"तुम्हे धोखा हुआ है।" लीजा ने हँसकर कहा।

"नहीं, जब किसी व्यक्ति की आत्मा स्वतन्त्र हो जाती है, तो वह नए सिरे से जवान हो जाता है।"

सचमुच, सब-कुछ बदल गया था, पर वह अपने अतीत से छुटकारा न पा सकी थी, न ही उसके मन से युद्ध के विध्वस का भय ही निकला था। युद्ध एक शोचनीय पडाव मे प्रवेश कर चुका था। बडी खतरनाक खबरे आ रही थीं। कर्नल शाम को घर आता तो झुँझलाया हुआ होता। दोपहर के खाने पर भी वह बहुत कम बात करता। इसके बावजूद वह लीजा मे प्रकट होने वाले परिवर्तनो से अनभिज्ञ न रहा। एक दिन कर्नल कहने लगा "इन दिनो तुम कितनी जवान नज़र आ रही हो। तुम बदल रही हो। तुम्हारी चाल तक मे बदलाव आ गया है।"

लीजा ने कर्नल की ओर चुभती हुई नजरो से देखते हुए पूछा, "तो क्या तुम चाहते हो कि मैं बूढी होती जाऊँ ?"

"नहीं, यह बात नहीं। जब तुमसे शादी की थी तब भी तुम इतनी सुदर और तेज़-तर्रार नजर नहीं आती थी, पर इन दिनो तुम " वह उसे घूरने लगा। लीजा के मन मे उसके लिए घृणा की लहर उठी और उसने अपना चेहरा झुका लिया।

कर्नल ने पूछा, "क्या सोच रही हो ?"

वह चुप रही। जवाब देने को भी जी नहीं चाहता था। किंतु उपेक्षा और घृणा को छिपाकर वह बोली, "कुछ भी तो नहीं।"

"तुम गहरे म जो खोई हुई हो ?"

"मैं बुढापे के बारे मे सोच रही थी।"

"मेरे बुढापे के बारे मे ?"

"नहीं, अपने बुढापे के बारे मे।"

''तुम्हारा बुढापा अभी बहुत दूर है। अभी तुम क्यों जिंदगी का मजा ले सकती हो।'' एकदम लीजा के अदर आग का शोला भडका। वह उत्तेजित हो उठी—काश! मैं जीवन का आनन्द ले सकती !

अगस्त का चल-चलाव था। सारा दिन तेज गर्मी पडती। कस्बे म पानी की कमी पराकाष्ठा पर थी। मियादी बुखार ने कस्बे को मजबूती से अपने शिकजे मे कस लिया। हर चीज की कीमत आकाश को छूने लगी। युद्ध का भयकर दैत्य मुँह फाडे खडा था। नागरिक और युद्धबदी भूख से कुलबुलाने लगे। कर्नल के बाग से रोज फल चोरी हो जाते। कर्नल ने चोरो से निपटने के लिए एक शिकारी बदूक मँगवा ली और अर्दली से कहा, ''ज्यो ही तुम किसी को बाग म देखो, उसे गोली मार दो।''

लीजा अपने प्रेम के ससार म खोई थी, पर युद्ध की भयावहता से प्रभावित हुए बिना न रह सकी। उसकी आत्मा सारी दुनिया के दु ख-दर्द महसूस करने लगी। वह सोचती—कितनी स्त्रियाँ ऐसी होगी, जो अपने पतियो, अपने प्रेमियो से बिछुडकर रह गई ह। युद्ध ने कितने लोगो के दिल तोड दिए होगे।

एक दिन बदी न आया 'फिर पाँच दिन बीत गए। यातना के निरतर पाँच दिन, जो लीजा के लिए पाँच सदिया के बराबर थे। लीजा के कान हर आवाज़ पर चौंक उठते। वह पेडो के साथ बाते करने लगी।

छठे दिन उससे सब्र न हो सका, तो वह कस्बे की ओर चल दी। वह जानी-पहचानी गलियो मे घूमती रही। युद्ध ने हर चीज को मुर्दा और कुरूप बना दिया था। नगे-भूखे बच्चे गलियो मे खुराक की तलाश मे मारे-मारे फिर रहे थे। लीजा की आँखो मे आँसू भर आए। वह रोती हुई वापस आ गई।

रात तारो से भरी हुई थी। चाँदनी मे भी गर्मी थी। मास्टर जी अपने विचारा म डूब हुए थे 'कि किसी पत्थर के दीवार स टकराने की आवाज आई पर उन्हे कोई चीज नजर न आई। वह उठकर खडे हो गए। उन्होने देखा कि कर्नल के बाग की बाड के साथ-साथ एक छाया लहरा रही है। उन्होने उस छाया को अपना भ्रम समझा। फिर चारो ओर गहरी भयानक खामोशी छा गई। फिर अचानक वह छाया शरीर म और भ्रम वास्तविकता मे बदल गया। मास्टरजी ने एक मर्द को बाग की ओर बढते हुए देखा और मीठी-मीठी सीटी

की आवाज सुनी, ऐसी आवाज जो दिल को छू रही थी, बडी मधुर, बडी आकर्षक। रुक-रुककर आवाज गूँजती और अधी खामोशी म डूब जाती। फिर उभरती, फिर डूबती जैसे किसी को बुला रही हो, पुकार रही हो। फिर यह आवाज डूब गई और बदूक दगने की आवाज आई। गोली की आवाज ने रात की खामोशी को टुकडे-टुकडे कर दिया। फिर किसी के भागने की आवाज।

कर्नल के कॉटेज से क्रोध से कडकती एक आवाज सुनाई दी। कोई दौडता हुआ बाहर निकला। कर्नल की आवाज़ कहर ढाने लगी। वह अपनी बीवी को पुकार दे रहा था। उसकी आवाज मे कर्कशता और नाराजगी थी। फिर कर्नल की बीवी की हृदयविदारक चीख

अचानक रात की खामोशी शोर से भर गई। कोई चीख रहा था कोई शोर मचा रहा था। पडोस के कुत्ते भौंकने लगे। मास्टरजी ने देखा कि कर्नल अपनी बीवी को घसीटकर कॉटेज की ओर लिये जा रहा है और वह बेचारी किसी पागल की तरह उसके साथ उलझ रही है।

रात के उस पहर म कर्नल ने खूब शराब पी। धुत्त होकर पडा रहा। सुबह बहुत देर से उठा।

लीजा नहीं थी।

बाद म, जाकर पता चला युद्धबदी भी नहीं था।

(एकरूपता लाने के उद्देश्य से कहानी के अत में क्षमायाचना सहित किंचित् परिवर्तन किया गया है।—सपादक)

अनुवादक सुरजीत

मानसी

धीरेन्द्र अस्थाना

मानसी ! मानसी ! मानसी !

बहुत शोर था मानसी का। चार-एक हजार मकानोंवाली उस मध्यवर्गीय कॉलोनी का खभा-खभा जैसे मानसी के अस्तित्व से रोमाचित हो स्तब्ध खडा था। जितने मुँह उतनी बाते। लेकिन कमाल यह कि सारी बाते या तो मानसी की प्रशस्ति म, या मानसी की भर्त्सना मे। जैसे मानसी न होती, तो लोगो की वाक्शक्ति बिला जाती और घरो मे मनहूसियत छा जाती। जवान लडको के दिलो को उजडने से और स्त्रियो को आपस में टकराने से मानो मानसी ने ही रोका हुआ था। सुबह दोपहर शाम औरतो मे एक ही चर्चा रहती—

मानसी चलती बहुत शान से है "मानसी सँवरती बहुत आन से है "मानसी बोलती बहुत सलीक से है "मानसी हँसती बहुत कायदे से है "मानसी को डास बहुत अच्छा आता है" "मानसी गाती बहुत सुरीला है" "मानसी बडो का सम्मान करती है" "मानसी छोटो को प्यार करती है "मानसी ने जब ज्यॉग्रफी से इटर मे दिल्ली टॉप किया तो राजधानी के सारे अखबारो म उसके फोटो छपे "मानसी कॉलोनी का गौरव है "मानसी बहुत शिष्ट सभ्य और सुसस्कृत लडकी है "मानसी कविताएँ लिखती है "मानसी को घूमने का बहुत शौक है "मानसी को इतना स्वतत्र नहीं होना चाहिए" "उसकी सगत से

भी पूरे देश को दिखाया गया था और आज सुबह के सभी प्रमुख अखबारो मे उसके चित्र छपे हुए थे। पत्रकारिता म उसके योगदान, उसकी चिंताओ, रुझानो, उपलब्धियो और सघर्षों की भी विस्तार से चर्चा की गई थी। लगभग आत्ममुग्ध स्थिति म, बौराया हुआ-सा वह अखबारो म डूबा था कि हाथ मे अखबार लिये, लगभग दौडते हुए एक लडकी ने प्रवेश किया और हाँफते हुए बोली, "आटी! अकल को इतना बडा पुरस्कार मिला " इससे आगे की बात वह पूरी नहा कर पाई और आहिस्ता-से बोली, "आटी कहाँ हैं ?"

"तुम ?" वह थोडा असहज हो गया।

"मैं मानसी।" लडकी ने लजाकर कहा।

"मानसी।" वह विस्मित हो गया।

"आटी नहीं है ?" लडकी रुक-रुककर बोली, "मैं बाद मे आऊँगी। वैसे, आपको बधाई।" उसने लगभग इतराकर कहा, "मुझे पता नहीं था कि आप इतने बडे आदमी है।"

"अरे नहीं।" वह अभी तक चक्ति था, लेकिन इससे पहले कि कुछ ओर कहता, मानसी उसी तरह दौडती चली गई, जिस तरह आई थी—बिल्कुल एक स्वप्न की तरह।

मानसी जा चुकी थी, लेकिन वह अभी तक उसी दिशा म देख रहा था, जहाँ से वह अदृश्य हुई थी।

'तुम सचमुच एक स्वप्न हो।' वह बडबडाया, 'नहीं तुम स्वप्न नहा, स्वप्न और यथार्थ के बीचोबीच खडी एक फटेसी हो।' उसने सोचा। सहसा वह उदास हो गया कि मानसी ने उसके लिए *अकल* सबोधन का इस्तेमाल किया। उसे दु ख हुआ कि मानसी पत्नी क साथ अपने रिश्ते के माध्यम से उसे जानती है। उसे अफसोस हुआ कि मानस-नायिका जेसी मानसी से वह अब तक अपरिचित रहा।

'मानसी! तुम इतनी देर म क्यो आईं ?' उसने सोचा और अपने को बहुत अकेला, हताश और निराश अनुभव किया। पुरस्कार के आह्लाद पर सहमा मानसी का अभाव उसने अपनी चेतना पर तारी होते अनुभव किया ओर अपनी बेचारगी से तार-तार हो गया। उसने तमाम अखबार समेटकर एक तरफ रख दिए और कुरसी पर आराम की मुद्रा मे पसर गया।

'कितना मजबूर है वह,' उसने सोचा, 'कि मानसी से परिचित होने के रास्ते पर सुनीता खडी हुई है—उसकी पत्नी अपने तमाम अधिकारो से लदी-

फँदी। जब तक सुनीता की आँखे सहमति न दे, तब तक वह मानसी से बोलना तो दूर, उसे अपने निकट देख भी नहा सकता।' हर समय असतुष्ट आर अधैर्य मे डूबा रहनेवाला उसका मन एकाएक एक ठोस कातरता से टकराकर कलपने लगा।

अचानक एक बेहद क्रूर ओर नगा सवाल किया उसने अपने-आप से। 'मानसी क्यो चाहिए उसे? ऐसा रूपवान या स्वप्निल पुरुष नहीं हे वह कि ससार की तमाम सुदर और सवेदनशील स्त्रियाँ उसकी कामना करने लगे। तो फिर वह क्यो करता है ऐसी कामनाएँ, जो असम्भव हो और जिनके पूरा न होने की स्थिति मे वह खाहमखाह की यत्रणा मे खील-खील होने लगे?' लेकिन यह सिर्फ प्रश्न था—ऐसा प्रश्न जिसका उत्तर पाकर आदमी खुद को पालतू और घरेलू किस्म की लिजलिजी शख्सीयत मे तब्दील हुआ महसूस करता हे। इसलिए प्रश्न प्रश्न ही रहा, उसकी यत्रणा को कम नहीं कर पाया। फिर उसे लगा ऐसे व्यर्थ और असुविधाजनक प्रश्ना से उलझने का कोई अर्थ ही नहीं है। मानसियाँ ऐसे प्रश्ना के पार खडी रहकर ही धडका करती हे। मानसियाँ न हा तो आदमी न रच सके आर न ही जी सके। इस कठिन और स्वार्थी ससार को मानसियाँ ही कोमल निष्कलुष और रागात्मक बनाती आई ह आज तक। मानसी के बारे मे इस तरह सोचना अच्छा लगा उसे, और सहसा उसने पाया कि एक रागिनी की तरह बज रही है मानसी उसके मन म।

मिनट के साठव हिस्से म भी देख लिया था उसने कि मानसी स्त्री के अस्तित्व का नहीं, स्त्री होने की शर्तों और एहसास का प्रतिरूप है। उसका तेजी से आना, ठिठकना लजाना इतराना और उसके बडप्पन को गहरी निष्ठा से स्वीकार कर, स्वप्नमयी हो अदृश्य हो जाना—इतना कुछ एक-साथ देख और महसूस कर कान नहीं चाहगा कि मानसा सिफ उसी क रक्त म एक उबाल की तरह उपस्थित रहे। उसने देखा था उन कुछ ही चमत्कारी-से क्षणा म कि मानसी स्वप्न देखने का सलीका भी जानती है और उन्ह पूरा करने का तरीका भी। वह दबग भी है ओर विनम्र भी। वह आजाद रह सकती है और आजाद रख भा सकती है। वह समपण करा भी सकती है और समर्पित होन म भी उस सकोच या दुविधा नहीं हागी। वह साथ हो ता अधिकारा का द्वद्व युद्ध नहीं अधिकारा का सह-अस्तित्व रचा जा सकता है। मानसी सहार का नहीं, निमाण का आमत्रण है जैसे। और जैस भी हो यह निमाण करना ही है उसे। युद्ध का नष्ट करके भा इस निमाण का सभव करना है क्योकि निर्मिति क

लिए आतुर और एकनिष्ठ मानसियाँ सडको पर नहा खडी रहती। उन्हे खोजना होता है। वह खुद क्या पिछले लबे समय से इस खोज मे नहीं लगा रहा है ?

अनायास ही उसकी आँखे नम हो आईं। उसे लगा, मानसी के रूप म उसे वर्षों से खोई हुई कोई दुर्लभ चीज दिख गई हे। उसका रोम-रोम कह रहा था कि मानसी फिर आएगी। मानसी आती रहेगी। मानसी का आना और उसके साथ मिलकर एक रचनात्मक स्वप्न को निर्मित करना तो किसी पवित्र ग्रथ मे मत्रा की तरह बहुत पहले से लिखा जा चुका है।

पत्नी चकित थी। वह यह मानने के लिए हरगिज तैयार नहीं थी कि अरविंद सुधर सकता है। लेकिन इस सचाई को भी वह कैसे नकार सकती थी कि पिछले काफी समय से अरविंद अपनी हर छुट्टी घर पर बिताने लगा था और शाम को सात-आठ बजे तक लौट आने लगा था। शराब पीना उसने नहा छोडा था, लेकिन यह सुख भी कम नहीं था कि पिछले काफी समय से उसकी निजी डायरी मे अरविंद से मिली यातना की कोई अभिव्यक्ति दर्ज नहीं हुई थी। उसे मालूम था कि अरविंद के जीवन मे आया यह परिवर्तन मानसी के कारण हे। लेकिन मानसी को लेकर उसे कोई खतरा नहीं था। वह अरविद को *अकल* और उसे *आटी* कहती थी और वैसा ही आदर-भरा बरताव करती थी। फिर मानसी अरविंद की उपस्थिति मे कभी घर नहा आती थी, इसलिए भी उसे मानसी की तरफ से ज्यादा चिंता नहीं थी। अरविंद के रसिक स्वभाव की जानकारी थी सुनीता को, लेकिन वह यह भी जानती थी कि अरविंद के लिए उसकी प्रतिष्ठा और गरिमा इतनी बडी लक्ष्मणरेखा है जिसे लाँघकर वह कोई काम नहीं कर सकता और इस कॉलोनी म तो कतई नहीं। इसलिए इस तरफ से वह एकदम निश्चिंत थी कि मानसी की उपस्थिति उसके दापत्य सबधो मे किसी अनिष्ट की तरह प्रवेश ले लेगी, लेकिन उस इतनी जहीन, लेकिन सपना म डूबी रहनेवाली लडकी का अरविंद-मोह उसे खुद मानसी के लिए हितकारी नहीं लगता था। अरविंद की अनुपस्थिति मे मानसी उसके पेन, उसकी किताबो और किसी न किसी बहाने उसके कपडो को जिस अदाज मे छूती, स्पर्श करती थी, उससे डर भी लगता था सुनीता को। सुनीता के जरिए अरविंद की कितनी ही रुचियो-आदतो को गहगई से जान गई थी मानसी। वह किसी भी शाम हाथ मे कटोरी लिये चली आती, 'आटी, ये भरवाँ करेले।

अकल को पसद हैं ना?' या, 'आटी, अकल को फलानी कविता के लिए बधाई देना।' या 'ये बॉलपेन लाई हूँ मैं अकल के लिए, उन्हे दे दीजिएगा।' या 'आटी, अकल पर दबाव डालिए ना, वे इतनी शराब न पिया करें।' एक दिन तो हद ही हो गई। सुनीता अरविंद की पट-शर्ट लेकर उन्हे धोने बाथरूम जा रही थी कि मानसी चली आई और बोली, "लाइए, मैं धो देती हूँ।"

'अरविंद को तो कुछ नहीं होगा।' तब सोचा था सुनीता ने—'ऐसा न हो कि यह लडकी कहीं की न रहे।'

और इसी प्रक्रिया मे एक काड कर दिया था मानसी ने। जो भी लडका उसे देखने आता था, उसे वह कोई न कोई मीन-मेख निकालकर रिजेक्ट कर देती थी। जब पिछले दिनो आए चौथे लडके के लिए भी मना कर दिया मानसी ने, तो सुनीता ने सहज जिज्ञासावश पूछ ही लिया उससे, "आखिर तेरी भी तो कोई कल्पना होगी। कैसा लडका चाहती है तू?"

एक अजीब अभिमान मे डूबकर गरदन ऊपर उठाई मानसी ने और नि सकोच बोली, "नाराज़ नहीं होना आटी। अगर आप नहीं होतीं अकल के जीवन में, तो मुझे अकल ही चाहिए थे। अकल मे जो बात है " मानसी ने अपनी दोनो हथेलियाँ आपस मे जोर से भींचकर कहा था और सुनीता को भौंचक छोड चली गई थी।

ये सारी सूचनाएँ सुनीता के जरिए अरविंद तक भी आती थीं, लेकिन वह लापरवाही से उडा देता था उन्हे। वह बिल्कुल नहीं चाहता था कि सुनीता को इस बात का आभास तक हो कि वह खुद मानसी को लेकर कहीं बहुत भावुक या कमजोर है। इस अतिम बात का भी उसने सुनीता के सामने यह कह ध्वस्त कर दिया कि लडकियाँ अपने पति के रूप मे अपने पिता की और लडके अपनी पत्नी के रूप मे अपनी माँ की ही कल्पना करते हैं, ऐसा मनोविज्ञान की दर्जनो किताबो मे लिखा है कि मानसी अभी बच्ची है और उसका यह किशोर-सुलभ उन्माद उसकी उम्र के साथ-साथ ढल जाएगा एक दिन।

सुनीता को निर्भय कर दिया था अरविंद ने, लेकिन खुद उलझ गया था। वह चाहने लगा था कि मानसी से रोज मिले, लेकिन इधर उसने उसकी अनुपस्थिति मे भी घर आना छोड दिया था। सुनीता से कह तो दिया था उसने कि उसे अकल ही चाहिए थे लेकिन कहने के बाद शायद डर भी गई थी और सुनीता का सामना करने की हिम्मत नहीं जुटा पा रही थी इसलिए नहीं आ रही थी।

आखिर मानसी आई, उसकी मौजूदगी म दूसरी बार। पहली बार तब, जब अरविंद ने उसे पहली बार देखा था और दूसरी बार अब, उसके जन्मदिन पर। वह सबसे अत म आई, बिन बुलाए, थोडा सकुचाती-सी। उसकी आँख, उसके होठ, उसकी उँगलियाँ, उसकी चाल, उसकी उलझन, उसका उल्लास, उसकी झिझक—सब-कुछ यह बता रहा था कि जन्मदिन की पार्टी म आए राजधानी के चर्चित लेखको, पत्रकारो, रगकर्मियो और अधिकारिया को देखकर वह न सिर्फ प्रभावित और सहमी हुई है, बल्कि मुग्ध और गर्वित भी है। वह नीली साडी पहनकर आई थी और एक काली डायरी लाई थी। डायरी के मुखपृष्ठ पर लाल गुलाब अकित था और उसकी लबी, पतली, पारदर्शी उँगलियो के पीछे से झाँक रहा था।

मानसी ने वहाँ उपस्थित सब लोगो का बहुत शालीनता से अभिवादन किया, डायरी उसे थमाई और होले-से मुस्कराकर भीतरवाले कमर म चली गई, सुनीता के पास।

उसने चुपचाप डायरी खोली। डायरी खोलते वक्त उसकी उँगलियाँ थरथरा रही थीं और हृदय एक अजीब-सी आतुरता और आकुलता के बीच आ-जा रहा था। डायरी के पहले पन्ने पर, बहुत सुदर अक्षरो म, नीली स्याही से लिखा था—'प्रिय अरविंद को, मानसी का मन।'

एकाएक यकीन नहीं हुआ उसे। धूल, धूप हवा वर्षा, अभाव दु ख, कष्ट, निराशा, वचना, यातना और निर्ममता से लडते-लडते लगभग प्रौढ और खुरदरी हो चली उसकी चेतना चौबीस वर्ष की युवा और कोमल लडकी का यह समर्पण सहसा झेल नहीं पाई। उसे लगा, यह हकीकत नहीं, उसके भीतर दबी कामना का स्वप्न-रूप है, लेकिन बार-बार पढने पर भी *प्रिय अरविंद को, मानसी का मन* ही अमिट रहा—मानसी की आटी और उसकी पत्नी सुनीता के आतक या नाराजगी से अप्रभावित, अपने म स्वायत्त और नेह की ऊष्मा से मद-मद दहकता हुआ। उसने डायरी बद कर तत्काल अपनी मेज की ड्रॉअर म, कागजो के नीचे दबा दी। मानसी द्वारा लिखे शब्दो का, सुनीता तक पहुँच जाने का अर्थ था—इस घर से मानसी का सपूर्ण बहिष्कार। मानसी की हिम्मत देख वह एकाएक अपनी नजरो मे छोटा भी हो आया। एक असहाय कायरता का डक अपने सीने म गडा महसूस करते हुए भी, एक पल को उसे लगा कि मानसी के सहारे वह किसी भी विघ्न को शिकस्त दे सकता है।

"क्योंकि अपना मन तुम मुझे दे चुकी हो।" अरविंद ने एक-एक शब्द पर रुकते हुए कहा और थोड़े अधिकार, लेकिन ज्यादा संकोच के साथ मानसी के कंधे पर अपना हाथ रख दिया। मानसी और भावुक हो आई थी और मानसी की आँखों में जल-सा चमकने लगा था।

जैसे भूडाल आया हो और सब-कुछ अपनी जगह से हिल गया हो। मानसी का रोम-रोम सिहर उठा। जैसे उसके पर निकल आए थे और अरविंद थे, नहीं, अरविंद था। यानी उस भूडाल का केंद्र बदल गया था। जैसे मानसी को सृष्टि पैदा करनी थी अरविंद के साथ मिलकर। उसने गहरी तड़प के साथ अरविंद की आँखों में देखा, अपनी एड़ियों को पंजों के बल थोड़ा ऊपर उठाया, किसी ऐन्द्रजालिक सम्मोहन की पुतली की तरह अरविंद के माथे पर अपने होंठ टिकाए और झटपट मुड़कर लौट चली गई।

अरविंद की दुनिया में जैसे हाहाकार मच गया। अपने मन का इतना निर्भय दान देकर मानसी ने अरविंद की पौरुष को जैसे नीचा दिखा दिया था। वह एक गहरे अपमान से घिर गया। उसे लगा, अगर वह भी बीस-बाईस वर्ष का बेफिक्र और ज़िन्दादिल युवक होता, तो उस लौटती हुई मानसी को भागकर पकड़ लेता और उसे उसके प्रेम का प्रतिदान दे देता। लेकिन वह छत्तीस वर्ष का एक ऐसा आदमी है, जिसे दूर-पास लोग गंभीर और धीर मानते हैं। बहुत संभव है कि उसे जाननेवाले कई लोग उस मामले की बात करते और मानसी को उसका चुंबन लेते हुए भी देख चुके हों और अपने अपने संस्मरणों में चटपटा इजाफा भी कर चुके हों। नहीं, इसलिए वह चुपचाप लगातार आँखों से दूर जाती मानसी की पीठ को वहीं खड़ा देखता रहा।

मानसी जा चुकी थी। वह इसी तरह जाती थी। यह तीसरी मुलाकात थी। तीनों बार वह अचानक आई थी और सहसा चली गई थी— अगली मुलाकात का कार्यक्रम तय किए बगैर।

चौथी बार मानसी उसके दफ्तर ही चली आई। वह सिर झुकाए एक लेख लिख रहा था कि कानों में एक झनझनाता और परिचित स्वर पड़ा, "मैं आपको आपके दफ्तर में काम करते देखना चाहती थी इसलिए चली आई।"

उसने चौंककर सिर उठाया और एक पल के लिए उसकी आँखें चौंधिया गईं—पीली साड़ी, पीला ब्लाउज, काला पर्स, गर्वीला विनम्र चेहरा, प्रश्नाकुल आँखें और अधखुले होंठ। मानसी उसके दफ्तर में थी एन उसके

सामने। थोडा-सा झुककर खडी हुई। मानसी को देख सहसा उसके जेहन म *इडियट* शब्द उतर आया आर उसका हाथ अनायास अपने माथे पर पहुँच गया, जहाँ मानसी के हाठा का स्पर्श अभी भी दहक और महक रहा था।

वह उससे बैठने को कहता या उसके इस अचानक आगमन के स्वागत मे उठकर खडा होता इसस पहले ही मानसी ने पूछा, "में जल हूँ या रेत?"

"मतलब?" वह अचकचा गया।

जवाब म मानसी ने उसकी मेज पर रखे शीशे के नीचे लिखी एक कवि की पक्तिया पर अपनी उँगली टिका दी, "मुझे क्षमा किया जाए, और जल को जल तथा रेत को रेत कहने दिया जाए।"

'नदी।' वह कहना चाहता था 'तुम नदी हो।' लेकिन तब तक मानसी *फिर मिलेगे* कहकर ऊँची एडी की सडिला से फर्श पर खट-खट करते हुए दफ्तर से बाहर निकल चुकी थी—उसे हमेशा की तरह चकित और व्यथित छोडकर।

तब मडी हाउस की सडक थी और वह दोड नहीं सका था। अब दफ्तर था और वह मानसी को पाछे स पुकार भा नहीं सकता था।

और इसीलिए इस बार वह झुँझला गया। मानसी के जिस व्यवहार ने पहले-पहल उसे मुग्ध कर दिया था उसकी चौथी बार पुनरावृत्ति होते देख उसके भीतर कहीं हल्की-सी कुठा और तकलीफ ने जन्म लिया। आखिर क्या जताना चाहती हे मानसी? क्या करती है वह ऐसा?

ज्यादा वक्त नही गुजरा। दो ही दिन बाद वह फिर दफ्तर मे थी। इस बार शाम के समय। नीली ड्रेस मे आई थी।

"मैं कल भी आई थी।" मानसी ने आते ही कहा।

"अच्छा? किसी ने बताया नहीं।" उसने शात स्वर म कहा, मानो मानसी के आने पर कोई विशेष सुख न हुआ हो उसे।

"मैने पूछताछ नही की। देखा आपकी मेज की दराज बद थीं और बैग भी नहीं है, सो चुप लौट आई।" मानसी ने इस अतरगता से कहा, जैसे वह उसकी आदता, रहन-सहन और स्वभाव से वर्षों से परिचित हो।

"उठग नहीं?" पलभर बाद उसने अधिकार-भरे स्वर म कहा। फिर उसका स्वर अनुरोध मे बदल गया "आज में आपका थोडा-सा वक्त लेना चाहती हूँ।"

"कोई विशेष बात?" उसने शात और सयमित आवाज मे पूछा, हालाँकि मानसी का अनुरोध सुन खुशी का एक बवडर-सा उसके भीतर उठा था और तेज-तेज मँडराने लगा था।

"मडी हाउस?" उसने सजीदा स्वर म पूछा।

"आपकी पसद।" मानसी ने जवाब दिया।

चौंकाने मे, मानसी को, लगता है, मजा आता था। अरविंद एक सुखद आश्चर्य से घिर गया। मानसी को कैसे पता चला कि उसे 'आपकी पसद' म बैठकर अच्छा लगता है। 'आपकी पसद' म बैठकर रेस्तराँ मे बैठे रहने की सार्वजनिकता के साथ ही निजता का सुख भी मिलता था।

एक गहरी कृतज्ञता के-से भाव से उसने मानसी की आँखो मे देखा, उठकर खडा हुआ, दराज बद की, बैग उठाया और मानसी के साथ दफ्तर की सीढियाँ उतरने लगा। नीचे उतरकर उसने स्कूटर रोका और मानसी को बैठने का निमत्रण दिया। मानसी की चेतना जैसे लुप्त हो चुकी थी और वह अरविंद के निर्देश पर ही जी रही थी इस समय। चेतना के इस लोप ने उसके चेहरे को प्रार्थना के मासूम क्षणा की तरह पवित्र और निर्दोप स्थिति म ढाल दिया था। वह चुप, स्कूटर मे बैठ गई। मानसी के बैठने के बाद वह खुद भी बैठ गया और बाला, "दरियागज।"

हवा के अनवरत झाके से मानसी के दुपट्टे का पल्ला उसक चेहरे से टकरा रहा था, लेकिन मानसी इस तरफ से शायद एकदम बेखबर थी। उसने भी ऐसा हाते रहने दिया। यह एक-दूसरे को महसूस करने के सर्वाधिक तल्लीन और निष्ठावान क्षण थे शायद।

"आप रोज शराब क्या पीते हैं?" सडक की तरफ देखती अपने म गुम, मानसी ने अचानक मुँह घुमाकर पूछा।

यह अप्रत्याशित था। वह इस समय मडी हाउस की सडक पर खडा था और मानसी उसके माथे को इस तरह चूम रही थी, मानो निर्भय होने का वरदान दे रही हो। इसीलिए मानसी के इस सवाल को सुन वह अचानक ऐसे व्यक्ति की तरह हो आया जो अभी-अभी, बीच नींद म अपना वध होते देख, घबराकर जागा हो। बडे अचरज से उसने मानसी को देखा और गहरे दु ख से भरकर पूछ बैठा "सुनीता ने बताया?"

"नहीं, लेकिन मैं जानती हूँ। परसा रात बारह बजे जब आप नशे म अपने घर के बाहर की सीढिया से फिसलकर खभे से टकराए, मेरा मन किया

सामने। थोडा-सा झुककर खडी हुई। मानसी को देख सहसा उसके जेहन म *ईडियट* शब्द उतर आया और उसका हाथ अनायास अपने माथे पर पहुँच गया, जहाँ मानसी के हाठो का स्पर्श अभी भी दहक और महक रहा था।

वह उससे बैठने को कहता या उसके इस अचानक आगमन क स्वागत म उठकर खडा होता, इससे पहले ही मानसी ने पूछा, "मैं जल हूँ या रेत?"

"मतलब?" वह अचकचा गया।

जवाब म मानसी ने उसको मेज पर रखे शीशे के नीचे लिखी एक कवि की पक्तिया पर अपनी उँगली टिका दी, "मुझे क्षमा किया जाए, और जल को जल तथा रेत को रेत कहने दिया जाए।"

'नदी।' वह कहना चाहता था 'तुम नदी हो!' लेकिन तब तक मानसी *फिर मिलगे* कहकर ऊँची एडी की सडिला से फर्श पर खट-खट करते हुए दफ्तर से बाहर निकल चुकी थी—उसे हमेशा की तरह चकित और व्यथित छोडकर।

तब मडी हाउस की सडक थी और वह दोड नहीं सका था। अब दफ्तर था और वह मानसी को पीछे से पुकार भी नहीं सकता था।

आर इसीलिए इस बार वह झुँझला गया। मानसी के जिस व्यवहार ने पहले-पहल उसे मुग्ध कर दिया था उसकी चोथी बार पुनरावृत्ति होते देख उसके भीतर कही हल्की-सी कुठा और तकलीफ ने जन्म लिया। आखिर क्या जताना चाहती है मानसी? क्यो करती हे वह ऐसा?

ज्यादा वक्त नहीं गुजरा। दो ही दिन बाद वह फिर दफ्तर मे थी। इस बार शाम के समय। नीली ड्रेस मे आई थी।

"मैं कल भी आई थी।" मानसी ने आते ही कहा।

"अच्छा? किसी ने बताया नहीं।" उसने शात स्वर मे कहा मानो मानसी के आने पर कोई विशेष सुख न हुआ हो उसे।

"मैने पूछताछ नहीं की। देखा, आपकी मेज की दराज बद थीं और बैग भी नहीं है, सो चुप लौट आई।" मानसी ने इस अतरगता से कहा जैसे वह उसकी आदतो, रहन-सहन और स्वभाव से वर्षों से परिचित हो।

"उठेगे नहीं?" पलभर बाद उसने अधिकार-भरे स्वर मे कहा। फिर उसका स्वर अनुरोध मे बदल गया "आज मैं आपका थोडा-सा वक्त लेना चाहती हूँ।"

"कोई विशेष बात?" उसने शांत और संयमित आवाज़ में पूछा, हालाँकि मानसी का अनुरोध सुन खुशी का एक बवंडर-सा उसके भीतर उठा था और तेज-तेज मँडराने लगा था।

"मंडी हाउस?" उसने संजीदा स्वर में पूछा।

"आपकी पसंद।" मानसी ने जवाब दिया।

चौंकाने में, मानसी को, लगता है, मजा आता था। अरविंद एक सुखद आश्चर्य में घिर गया। मानसी को कैसे पता चला कि उसे 'आपकी पसंद' में बैठकर अच्छा लगता है। 'आपकी पसंद' में बैठकर रेस्तराँ में बैठे रहने की सार्वजनिकता के साथ ही निजता का सुख भी मिलता था।

एक गहरी कृतज्ञता के-से भाव से उसने मानसी की आँखों में देखा, उठकर खड़ा हुआ, दराज बंद की, बैग उठाया और मानसी के साथ दफ्तर की सीढ़ियाँ उतरने लगा। नीचे उतरकर उसने स्कूटर रोका और मानसी को बैठने का निमंत्रण दिया। मानसी की चेतना जैसे लुप्त हो चुकी थी और वह अरविंद के निर्देश पर ही जी रही थी इस समय। चेतना के इस लोप ने उसके चेहरे को प्रार्थना के मासूम क्षणों की तरह पवित्र और निर्दोष स्थिति में ढाल दिया था। वह चुप, स्कूटर में बैठ गई। मानसी के बैठने के बाद वह खुद भी बैठ गया और बोला, "दरियागंज।"

हवा के अनवरत झोंके से मानसी के दुपट्टे का पल्ला उसके चेहरे से टकरा रहा था, लेकिन मानसी इस तरफ से शायद एकदम बेखबर थी। उसने भी ऐसा होते रहने दिया। यह एक-दूसरे को महसूस करने के सर्वाधिक तल्लीन और निष्ठावान क्षण थे शायद।

"आप रोज शराब क्यों पीते हैं?" सड़क की तरफ देखती, अपने में गुम, मानसी ने अचानक मुँह घुमाकर पूछा।

यह अप्रत्याशित था। वह इस समय मंडी हाउस की सड़क पर खड़ा था और मानसी उसके माथे को इस तरह चूम रही थी, मानो निर्भय होने का वरदान दे रही हो। इसीलिए मानसी के इस सवाल को सुन वह अचानक ऐसे व्यक्ति की तरह हो आया जो अभी-अभी, बीच नींद में, अपना वध होते देख, घबराकर जागा हो। बड़े अचरज से उसने मानसी को देखा और गहरे दुःख से भरकर पूछ बैठा, "सुनीता ने बताया?"

"नहीं, लेकिन मैं जानती हूँ। परसों रात बारह बजे जब आप नशे में अपने घर के बाहर की सीढ़ियों से फिसलकर खंभे से टकराए, मेरा मन किया,

दोडकर आपको सँभाल लूँ। पर ऐसा सभव नहीं था न।'' मानसी की आँखा म हताशा उतर आई थी।

उसका हाथ अपने माथे पर चला गया। पर, मानसी तब कहाँ थी ? उसने सोचा और हैरानी से मानसी को देखा।

''जब तक आप घर नहीं आ जाते, मै अपनी खिडकी से आपको देखा करती हूँ।'' मानसा न रहस्योद्घाटन-सा किया।

''तुम्हारा घर कहाँ है ?'' उसे ताज्जुब हुआ कि वह यह भी नही जानता कि मानसी का घर कहाँ है।

''आपके घर से तीन घर पहले। आप रोज रात मेरे कमरे को खिडकी के सामने से ही गुजरते ह।'' मानसी ने बताया।

तीन घर पहले ? उसने कुछ याद करना चाहा, लकिन तभी मानसी बोल पडी, ''नीचेवाला घर नहीं, ऊपरवाला घर। आप मुझे नहीं देख सकते।''

''पर मेरे लोटने तक तुम क्या जागती रहती हो ?'' उसने सीधा सवाल किया। वह अपने प्रति मानसी के लगाव के रेशे-रेशे को जान लेना चाहता था।

''मै बहुत डरी हुई रहती हूँ। मुझे लगता रहता ह कि आपके साथ कोई *मिसहैपनिंग* न हो जाए। कई बार तो ऐसा हुआ कि आपके आने से पहले मुझे झपकी आ गई आर मने नीद मे देखा कि एक ट्रक ''

''सुनो मानसी।'' उसने मानसी का हाथ पकड लिया, ''मुझे कमजोर मत करो।'' मानसी की निष्ठा ने उसके आकाक्षी मन को कहीं बहुत भीतर जाकर छू लिया था।

''पर आप रोज क्यो पीते हैं ?''

''क्योकि सोने की जरूरत रोज पडती है।'' वह सक्षिप्त होकर दुर्बोध हो गया। इतने नाजुक सवाल का जवाब देने का यह सही मोका नहीं था।

दरियागज आ गया था। उसने स्कूटर को रुकने का सकेत किया ओर मीटर देखने लगा।

''पैसे मैं दूँगी।'' मानसी पर्स खोलने लगी।

''नहीं।'' उसने थोडा जोर से कहा और स्कूटर का बिल चुका दिया। कुछ ही समय बाद वे 'आपकी पसद' के सुखकारी माहौल म थे। 'आपकी पसद' म कई नामा की चाय थी। मानसी ने 'हम दोना' का आदेश दिया।

''आपकी मेज पर इब्सन की एक पक्ति लिखी हुई है।'' मानसी ने कहा ''सबसे शक्तिशाली व्यक्ति वह है, जो नितात अकला है। क्या यह सही है ?''

''तुम्हे क्या लगता है ?'' उसने प्रतिप्रश्न किया।

''मुझे लगता है, यह गलत है। मै तो खुद को बहुत कमजोर अनुभव करती हूँ।'' मानसी का स्वर उखडा, हताश और टूटा हुआ था, ''हो सकता है आपके सदर्भ म यह सही हो, फिर आप अकेले कहाँ हैं ?''

''मैं भी अकेला ही हूँ मानसी।'' अरविंद का स्वर भावुकता से भर उठा ''और कमजोर भी बहुत हूँ।''

''क्यो होता हे ऐसा ?'' मानसी ने पूछा, ''इतने सारे लोगो के होते हुए भी आदमी अकेला क्यो रह जाता है ?''

''क्योकि अकेलापन भौतिक नहीं, मानसिक स्थिति हे।'' वह गभार हो गया, ''जब तक मन का साझीदार न मिले, तब तक अकेलेपन से मुक्ति सभव नही है।''

''तो फिर ?'' मानसी ने उसकी हथेलियाँ थाम लीं ओर तुरत ही छोड भी दीं।

''क्या यह अपराध है ?'' पूछा मानसी ने।

''अपराध ?'' इस बार अरविंद ने मानसी की लगभग पसीजी हथेलिया को बहुत कोमलता से थाम लिया आर उन पर अपनी हथेलियाँ फिराता हुआ बोला ''अपराध सिर्फ अपनी इच्छा के विरुद्ध जीना है मानसी। पर हम क्या करते हैं ? घर से लेकर दफ्तर और निजी से लेकर परिवार के स्तर तक लगातार वह जीते ह जिससे बहुत भीतर तक घृणा करते हैं।'' अरविंद एक ऐसी तकलीफ के बीच खडा तडफ रहा था जिसने मानसी को बहुत दूर तक व्यथित कर दिया। उसने चाहा कि इस निर्दोष और गरिमामय बच्चे को अपने सीने म छुपा ले। अपने से बारह साल बडा अरविंद अपनी टूटन म उसके सामने एक ऐसे अबोध बच्च म बदल गया था, जिसे चारा तरफ से ढेर सारी विपत्तिया ने घेरा हुआ हो। अपना जीवन दकर भी इस अरविंद को बचाना चाहती थी मानसी। पर कैसे ?

सहसा मानसी को झटका-सा लगा। उसकी हथेलिया पर अरविंद की पकड क्रमश कठोर पडने लगी थी। आर अधिक डूबन स बडी मुश्किल स रोका मानसी ने खुद को। यह सावजनिक स्थान था और अरविंद की पहचान का कोई भी व्यक्ति यहाँ किसी भी समय प्रवेश ले सकता था। उसका क्या है ? कौन जानता है उसे ? पर अरविंद ? उफ। मानसी का साना दर्द कर उठा। कितना मजबूत है यह शख्स। कैसे-कैसे बधना म जकडा हुआ। यश आदमी

को इस कदर गुलाम भी बनाता है, यह अनुभव मानसी को पहली बार हो रहा था। अभी तो कितनी सचाइयाँ जाननी ह मानसी को, इस अपने कल्पनापुरुष के जरिए।

"आपने डायरी म क्या लिखा ?" मानसी फिर एक जिज्ञासु प्रशसिका म बदल गई और उसने आहिस्ता से अपनी हथेलियाँ छुडा लीं।

"उसम लिखने के लिए तो पहला पन्ना फाडना पडेगा।"

"तो फाड दीजिए।" मानसी मुस्कराई।

"शब्दो को नष्ट करना इतना सरल नहीं होता मानसी।"

"चले ?" मानसी ने विषय बदल दिया। इतनी देर हो चुकी थी कि घर म चिंता और क्रोध टहलने लगते।

"चलो।" अरविंद उठ खडा हुआ। उसे अच्छा लगा। पहली बार मानसी चलने के लिए पूछ रही थी। उठकर चली नहीं गई थी।

दो

महत्त्वाकाक्षाआ स्वप्नो, दुश्चिंताओ, आशकाओ बेचैनिया, प्रश्नो सवेदनाओ, चाहतो, दुस्साहसो और छोटे-बडे डरा से मिलकर बना था मानसी का व्यक्तित्व। प्रश्न चाहे खोजी पत्रकारिता की सीमा और सभावना से जुडा हो चाहे विवाहेतर सबधो की नैतिकता और तकाजे से, या सेक्स की पेचीदगिया, अनिवार्यता ओर मनोविज्ञान से मानसी सबके बारे मे सब-कुछ जानने को हरदम व्यग्र रहती थी। उससे बात करने मे सुख मिलता था, लेकिन कई बार बात इतना अधिक विस्तार पा लेती थीं कि एक ऊब और उलझन-सी होने लगती ओर अरविंद का मन बीच बहस म उचट जाता था।

एक दिक्कत और थी मानसी के साथ। इस दिक्कत का एहसास अरविंद को मानसी के साथ अपने छ महीने के परिचय मे बहुत गहराई से हो गया था। दिक्कत यह थी कि बात चाहे किसी भी विषय पर चल रही हो और मानसी ने बातचीत का चाहे कोई भी सिरा थाम रखा हो अतत होता यह था कि केद्र मे मानसी आ जाती थी और विषय उससे शुरू होकर उसी पर शेष होने लगता। मर्लिन मनरो उसकी प्रिय नायिका थी और इस बात से वह बहुत पीडित रहती थी कि रूप यौवन, यश और दौलत के कल्पनातीत सुख के बीचोबीच रहनेवाली मर्लिन को नींद की गोलियाँ खाकर एकदम चुपचाप और अकेले मरना पडा। 'मैं होती मर्लिन की जगह तो ' मानसी कहा करती

मानसी के इस रूप की जानकारी नहीं थी उसे। कुछ देर वह यूँ ही अवाक् बैठा रहा, फिर पैसे चुकाकर बाहर निकल आया। बाहर मानसी एक स्कूटर रुकवाकर उसमे बैठ चुकी थी और उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसे सचमुच सिहरन-सी होने लगी। क्या करने जा रही है मानसी ? कहाँ जा रही है मानसी ? उस भी साथ जाना है या अकेली ही जाएगी मानसी ? आशकाआ से घिरा हुआ वह स्कूटर के करीब आया।

''बैठ।'' मानसी की आवाज ही नहीं चेहरा भी तद्रिल हो गया था, पर साथ ही उसकी आँखा म कुछ कर गुजरने का अजीब-सा जिद्दी भाव भी उतर आया था।

वह चुपचाप किसी नटखट लेकिन डरे हुए बच्चे की तरह स्कूटर म आ बैठा, मानसी से बचते हुए। उसके बैठते ही मानसी ने स्कूटरवाले स कहा ''शातिवन।''

शातिवन। उसकी चेतना पर यह सुहानी और रोमानी जगह किसी पत्थर-सी टकराई। उसने चुपचाप घडी देखी। सात बजकर दस मिनट। इस समय तक तो शातिवन एक गहरे सन्नाटे और पारदर्शी अँधेरे म डूब चुका होगा। उसके घने वृक्षो के नीचे अँधेरा भय की तरह उतर आया होगा। उसे सचमुच ठड लगने लगी।

शातिवन आ गया था। मानसी उसके समानातर चलती रही। चुप। निर्विकार। इतनी सघन और रहस्यमय चुप्पी से लडने के लिए अरविद ने सिगरेट जला ली। जब तक सिगरेट खत्म हुई, वे पेडो के एक बडे झुरमुट के घने और खामोश साये के नीचे अँधेरे से एकाकार हो चुके थे।

तभी मानसी रुक गई। इतने अचानक कि सँभलते-सँभलते भी अरविंद मानसी से टकरा ही गया। आर इससे पहले कि उसके होठ स्वभाववश *सॉरी* शब्द का उच्चारण करते उन पर मानसी के उत्तप्त, अछूते और जवान हाठ आकर चिपक गए।

''लो, और लो।'' मानसी बडबडाई और उसके हाठो माथे, गरदन और गाला पर किसी हिस्टीरिया के रोगी की तरह टूट पडी।

मानसी के इस अप्रत्याशित ज्वार को उसका स्थिर अप्रस्तुत और प्रम का शालीनता से लेन-देन करनेवाला तन-मन झेल नहीं पाया।

''मानसी।'' उसने सख्त लेकिन फुसफुसाहट सरीखी आवाज मे मानसी को अपने से अलगाने की कोशिश करते हुए कहा। उसे ध्यान आ गया कि इस

हालत मे अगर कोई उसे देख ले, तो वह अखबारा का विषय तो बन ही जाएगा, उसका अपना घर कुभीपाक नरक म तब्दील हो जाएगा। घर, दफ्तर, कॉलोनी, दोस्त, प्रतिद्वद्वी पत्रकार—किस-किसको जवाब देता फिरेगा और किस-किससे टकराएगा उसका अतर्मुखी, सकोची और भीरु व्यक्तित्व ?

मानसी अलग नहीं हटी थी, बल्कि आर भी कसकर उसस चिपट गइ थी।

''मानसी, हटो!'' अचानक उसने मानसी को कसकर धक्का दे दिया।

उसके धक्के से मानसी लडखडा गई और पेड से टकरा गई। उसका शॉल नीचे गिर पडा। एक पल के लिए उसकी आहत ऑखे अरविंद के चेहरे से टकराईं और दूसरे ही पल वह फिर हॉंफती हुई-सी अरविंद के जिस्म से आ लगी और लडखडाई आवाज मे बोली, ''छ महीने। छ महीने से अभाव के नरक मे जल रही हूँ मैं, और नहीं।''

''लेकिन उसका यह तरीका नही है।'' अरविंद ने उसे फिर छुडाने की कोशिश की।

''मै किसी तरीके को नहीं मानती। अरविंद जी के प्रभामडल से लडते-लडते टूट गइ हूँ मैं। मुझे अरविंद जी नहीं, अरविंद चाहिए, सिर्फ अरविंद और वह भी तत्काल।'' मानसी ने टूटे, थके और समर्पित शब्दो मे कहा ओर उसके गले से लगकर रोने लगी।

अरविंद का मन भर आया। मानसी के जिस्म का उद्दाम आवेग एक शिथिल और कातर उपस्थिति मे ढल रहा था। उसे लगा कि सारी वर्जनाओ और आशकाओ के पार जाकर वह इसी पल मानसी को अपना ले—सपूर्ण और सर्वांग। आखिर यही तो चाहता रहा हे वह खुद भी। तो फिर इतना सकोच क्यो ? प्रेम का इतना खुला, सार्वजनिक और वेगवान निमत्रण भी उसकी शिराओ के रक्त को गरमा क्यो नहीं पा रहा है ? इस सर्द रात मे एक युवा, सुदर और दहकता हुआ स्त्री-शरीर उसे ऊष्मा देने के बजाय बर्फानी एहसास के आगोश म क्यो धकेल रहा है ? शायद प्रेम का इतना दबग आक्रामक और आकस्मिक समर्पण उसके सस्कार ओर व्यवहार की दुनिया मे एकदम अनजाना और अपरिचित रहा है, इसीलिए आज वह उस मोरचे पर बिना लडे पराजित हो रहा है, जिसे फतह करने की कामना मे ही जी रहा था वह, पिछले छ महीने से। उसने पुन एक सिगरेट सुलगा ली। जमीन से मानसी का शॉल उठाकर उस ओढाया और बोला ''चलो।''

मानसी ने सिर झुका लिया और अँधेरे को चीरकर आगे बढते अरविंद का पीछा करने लगी। नि शब्द। उसके आगे, सब-कुछ पाकर, वीतरागी हो उठे आदमी की तरह चल रहा था अरविंद--लगातार यह सोचते हुए कि मानसी के निमत्रण को ठुकराकर शायद उसने अच्छा नहीं किया। पर अब क्या हो सकता था, सिवा एक गहरे पश्चात्ताप म डूबने-उतराने के।

मानसी को नींद नहीं आती। तीन महीने से उसकी आँख अनवरत जल रही हैं। जब भी आँख बद करती है, शातिवन वाला दृश्य उसकी चेतना म हा-हा, हू-हू करने लगता है। कितनी ही राते वह चौंककर उठ बैठी है और कितनी ही रात पूरी-पूरी रात जागी रह गई है। घर मे, कॉलेज म, किताबा म, नींद म हर कहीं बस एक ही दृश्य। इस दृश्य से टकराते-टकराते उसका मस्तिष्क जगह-जगह से दरक गया है मानो। अगर तीन महीने पहले शातिवन की उस स्तब्ध रात मे उसके उन्मादी समर्पण को अपना लिया होता अरविंद ने, तो शायद उसकी आत्मा म मनहूसियत की तरह गूँजता यह विलाप उसे इस तरह न सताता। उसे खुद पता नहीं, कैसे क्या हुआ। उसने तो हमेशा अरविंद के सम्मान प्रभामडल, लोकप्रियता और प्रतिभा से ही प्रेम किया। वह हमेशा यही चाहती रही कि उसके जीवन म अरविंद एक वृक्ष की तरह उपस्थित रहे और वह उनकी घनी और सरपरस्त छाँव मे रहते हुए ही इस प्रतिकूल दुनिया म अपने स्वतत्र अस्तित्व को आकार दे। अरविंद को एक पुरुष की तरह न उसने चाहा था, न ही अरविंद के पुरुष म अपने अस्तित्व की सार्थकता पाने की उसने इच्छा की थी। तो फिर क्या हुआ ऐसा कि अरविंद उसके स्वप्ना म, उसकी कामनाओ मे एक पुरुष की तरह आकार लेते रहे? अरविंद की आदतो, अरविंद के स्वभाव, अरविंद की चाहता, अरविंद के शब्दो अरविंद के अकेलेपन और अपने प्रति अरविंद के झुकाव को जानने-समझने और गहराई से महसूस करने की तीव्रता ने ही क्या उसे इस परिणति तक पहुँचाया कि छत्तीस वर्ष के शादीशुदा और समाज मे प्रतिष्ठित लगभग प्रौढ अरविंद उसकी दुनिया मे जिस्मानी और रूहानी स्तर पर एक कल्पना-पुरुष के रूप म मूर्त हो उठे? लेकिन इसका क्या करे कि उसकी जैसी लडकी का कल्पना-पुरुष अरविंद जैसा व्यक्ति ही हो सकता है? कॉलोनी मे उसकी स्वतत्रता को चाहे जितने भी छिछले और अश्लील स्तर पर लिया जाता हो, उसके खयालो और आचरण से खफा होकर पिता भले ही एक अजनबी मे बदल गए हा,

लेकिन उसका अतर्मन जानता है कि वह कितना निष्पाप और बेदाग जीवन बिताती आई है।

अरविंद से पहले किसी एक को भी अपना मन नहीं दिया मानसी ने। उसे लगा ही नहीं कि उसकी जैसी स्वप्नदर्शी और महत्त्वाकाक्षी लडकी को पत्नी के रूप मे कोई पारपरिक पुरुष झेल सकता है। या खुद वही किसी ऐसे पुरुष को पति स्वीकार कर सकती है, जो जमाने-भर की मूर्खताओ, अधविश्वासो और कुठाओ से भरा हुआ हे। सुखा-दु खा, स्वप्नो-यातनाओ को बिना कुठा और पूर्वाग्रहा के शेयर कर सकनेवाले पुरुप की प्रतीक्षा मे उसने अपने जीवन के चौबीसवे वर्ष को भी सूना, अधूरा और रिक्त रहने दिया। उसकी कितनी ही हमउम्र सहेलियाँ इस बीच घर बसाकर यहाँ-वहाँ चल दीं। कितनी ही सहेलियो के घर-आँगन मे बच्चे ठुनकने लगे और कितनी ही सहेलियाँ घर बसाने के बाद उसे तोडकर अदालतो म तारीखे भुगत रही हैं। वह भी चाहती, तो ऐसा ही कुछ कर लेती अब तक। पर उसने ऐसा नहीं किया, क्याकि अपनी ही शर्तो पर जीवन को आकार देना चाहती थी वह। उसे भरोसा था कि देर-सवेर वह एक ऐसे जीवनसाथी को खोज ही लेगी, जो उसे भी स्वाधीन रखे और खुद भी स्वाधीन रहे।

और ऐसे आदमी का अस्तित्व उसे अरविंद मे दिखा, इसका क्या करे वह?

अपने कल्पना-पुरुष की प्रतीक्षा म, अरविंद के प्रभामडल के बाहर ही खडी रहती वह, लेकिन खुद अरविंद जिस तरह अपने प्रभामडल से बाहर निकलकर उससे मिले-घुले और खुले, उससे लक्ष्मणरेखा के भीतर पहुँच गई वह। यह सही है कि उनके जन्मदिवस पर डायरी मे अपना मन पहले उसी ने दिया, लेकिन अरविंद उस मन को अस्वीकृत भी तो कर सकते थे। उन्होने अपना क्या लिया उसका मन? और जब अपनाया था, तो शातिवन मे उसका इतना निर्मम मर्दन क्यो कर दिया? क्यो इतनी सजीदगी से माँगी थी उन्हाने फीस? क्यो पूछा था कि वह मेरे कौन हैं? और जब स्त्री होने के बावजूद उसने खुद ही उनके और अपने रिश्ते को आकार देना चाहा तो उन्होने धक्का दे दिया।

उफ। मानसी की कनपटी फिर तड-तड करने लगी। अरविंद द्वारा धक्का दिए जाने का दृश्य फिर से कद्दावर होने लगा। बस इसी दृश्य को नहीं झेल सकती मानसी। काश, यही एक दृश्य कोई उसकी स्मृति से मिटा दे। यह

दृश्य उसके स्नेहिल और रागात्मक ससार को हिंसक और बर्बर रणस्थली मे बदल देता है। अरविंद द्वारा अपमानित कर दिए जाने पर भी उनके विरुद्ध नहीं जा सकती मानसी।

पर उसे ठुकराकर खुद भी तो एक रौरव नरक मे जल रहे हैं अरविंद। शातिवनवाली घटना के बाद वह अरविंद से एक बार भी नहीं मिली लेकिन रोज रात बारह और एक बजे नशे से आक्रात अपने आत्मघाती व्यक्तित्व को थरथराते कदमो से अपने घर तक पहुँचाते, उसी की खिडकी के नीचे से ही तो गुजरते हैं वह। आटी बता रही थीं कि पहले से ज्यादा पीने लगे हैं अरविंद।

अरविंद जल रहे हैं, अरविंद नष्ट हो रहे है, अरविंद मर रहे है। उसके समर्पण को अस्वीकार करके अरविंद भी सुखी नहीं हैं—एक अजीब-सा सुख मिला मानसी को।

लेकिन यह सुख भी मानसी के लिए अनिद्रा ही लाता है। कैसे सोए मानसी? मानसी जानती है कि खुद का नष्ट कर दगे अरविंद, लेकिन उससे एक शब्द नहीं कहेगे। अपने बडप्पन के दायरे से निकलकर मित्रता की पुन स्थापना वह खुद कभी नहीं करेगे। आटी सिर्फ कहती है, लेकिन अरविंद की नस-नस को जानती है मानसी। यह जानना ही उसके और अरविंद के सताप का स्रोत है, यह भी जानती है मानसी। इस स्रोत को ही नष्ट करना होगा, वरना मुक्ति सभव ही नहीं।

खिडकी से सिर टिकाए, अरविंद के इतजार म जागती सोच रही है मानसी कि खुद को अरविंद से ओर खुद से अरविंद को कैसे मुक्त करे वह?

तभी सडक पर शोर-सा हुआ। अँधेरे म आँखे फाडकर देखा मानसी ने—खुद को सँभाल न पाने के कारण नशे मे धुत्त अरविंद रिक्शे से लुढककर सडक पर गिर पडे हैं। मानसी के कठ से दबी-दबी चीख निकल पडी। रिक्शेवाला अरविंद की घडी खोल रहा था। शोर मचाने से अरविंद की प्रतिष्ठा जा सकती थी इसलिए आँखो मे आँसू लिये सिर्फ देखती रही मानसी कि अरविंद के सिर पर लात मारकर भाग गया रिक्शेवाला।

हे भगवान! मानसी को लगा कि पृथ्वी को फट जाना चाहिए। इस आदमी के लिखे एक-एक शब्द को कितने गार से पढते हैं लोग। 'हे ईश्वर!' मानसी ने प्रार्थना की, 'इस रिक्शेवाले को क्षमा करना, यह नहीं जानता कि इसने क्या किया।'

अरविंद उठ रहे थे। लडखडाते हुए वह उसकी खिडकी के ऐन नीचे आए। सिर उठाकर उन्होने एक पल के लिए ऊपर ताका और आगे बढ गए—अपने घर की तरफ।

अब घटी बजाई होगी उन्होने—मानसी ने सोचा। कुछ ही देर बाद दरवाजा खुलने और बद होने की आवाज सुनी मानसी ने और अपना सिर खिडकी की चौखट पर दे मारा।

मानसी को पता चला—अरविंद जा रहे हैं। उनका अखबार उन्हे मुबई भेज रहा है। फिलहाल अकेले जा रहे हैं, बाद मे आटी को भी आकर ले जाएँगे। खुद को रोक नहीं पाई मानसी। अरविंद के दफ्तर पहुँच गई। वह उठने की तैयारी कर रहे थे। उसे देखा और चेहरे पर बिना कोई भाव लाए धीमे-से बोले, "मैं जानता था, तुम आओगी। 'हम दोनो' पीने 'आपकी पसद' चलोगी?"

मानसी चुप रही। पूरे छ महीने बाद इतने करीब से देख रही थी वह अरविंद को। जरा भी नहीं बदले। सिर्फ चश्मा नया है और आँखो के नीचे की सूजन थोडा और बढ गई है।

"घडी कहाँ गई?" मानसी ने पूछा।

"शातिवन वाली घटना के बाद से मेरा इतजार करना भी बद कर दिया था क्या?" शाति से पूछा अरविंद ने।

उफ! भीतर तक सिहर गई मानसी। इसीलिए तो चाहिए था यह शख्स मुझे! उसने सोचा—इसीलिए तो दिया था इस आदमी को अपना मन क्योंकि यह मन की कद्र करना जानता है।

"मुबई कब जा रहे हैं?"

"दो रोज बाद।"

"क्यों?"

"क्योकि मन मे बैठी हुई मानसी से सिर्फ समुद्र ही मुक्त कर सकता है।"

पहली बार चूक हुई मानसी से। वह समझ नहीं पाई कि अरविंद क्या कहना चाहते हैं, समुद्र को बीच मे लाकर। आहत होकर बोली, "आप तो मुक्त हो जाएँगे। मुझे कौन मुक्त करेगा?"

"मानसी का मन।" कहा अरविंद ने।

''पर वह तो आपके पास है।''

''इसीलिए मैंने आज तक उस पर कुछ नहीं लिखा।'' अरविंद ने अपनी मेज की दराज खोलते हुए कहा, ''मुझे मालूम था कि एक रोज तुम्हारा मन तुम्हे लौटाना होगा।'' अरविंद ने मानसी द्वारा दी हुई डायरी निकाली और कहा, ''इसे रख लो। घर से उठाकर यहाँ ले आया था कि आओगी तो लौटा दूँगा। देखो, यह एकदम कोरी है।''

''कितना निर्लज्ज झूठ बोलते हैं आप।'' मानसी का स्वर एक-साथ उद्धत और आहत हो गया, ''इसके पन्ने-पन्ने पर मानसी का मर्सिया लिखने के बावजूद कहते हैं कि यह कोरी है।''

''मानसी।'' अरविंद का स्वर डूब गया।

''*हम दोनो*।'' मानसी ने धीरे-से कहा और रूमाल से अपनी आँखे पोछ लीं।

अरविंद ने अपना बैग उठा लिया। मानसी भी उठ खड़ी हुई।

आपकी पसद मे हम दोनो पीने तक कोई कुछ नहीं बोला। चाय खत्म करके मानसी ने ही कहा, ''कितने दिन गुजर गए यहाँ की चाय पिए।''

''सिर्फ तुम्हे।'' अरविंद ने जवाब दिया, ''मै छ महीने से यहाँ रोज आ रहा हूँ। एक चाय अपने हिस्से की पीता हूँ, एक तुम्हारे हिस्से की।''

'क्यो?' मानसी के भीतर एक स्त्री रोने लगी, 'क्यो करते रहे अरविंद ऐसा?' उसने सोचा, 'छत्तीस बरस का यह सगदिल-सा दिखनेवाला पुरुष इतना भावुक क्यो है?'

''*मानसी।'' अरविंद ने सिगरेट जलाते हुए कहा,* ''पिछले छ महीने मे मैंने बार-बार सोचा है और हर बार पाया है कि मैं तुमसे प्यार करता हूँ—ऐसा प्यार, जो मन और तन दोना पर अधिकार चाहता है। मैं चाहता तो छ महीने पहले तुम्हे ले सकता था, पर मैंने खुद को रोक दिया। जानती हो क्यो? क्योकि मैं नहीं चाहता था कि मानसी जैसी लडकी समाज म दूसरी औरत या रखैल कहलाए। यह सच है मानसी,'' अरविंद ने सिगरेट का लबा कश *लिया,* ''कि मैं तुम्हे अपनी बीवी नहीं बना सकता। सुनीता जैसी सहनशील और मेरे भीतर के नरक को निर्विरोध स्वीकार कर लेनेवाली औरत तुम शायद कभी न बन पातीं।''

''चले?'' मानसी बीच मे ही पूछ बैठी।

''नहीं मुझे पूरा सुने बगैर नहीं जा सकतीं तुम।'' अरविंद ने आदेश-सा

दिया, ''तुमने सिर्फ मेरा उजास देखा है। मेरे भीतर के अधकार और दुर्गंध से परिचय नहीं है तुम्हारा। मेरे भीतर की अँधेरी, घृणित और असहनीय दुनिया म सिर्फ सुनीता ही रह सकती है मानसी। तुम्हारा तो दम घुट जाएगा वहाँ। मेरे अशक्त और खोखले हो चुके तन को प्रेमिका की नहीं, परिचारिका की जरूरत है मानसी, और परिचारिका मानसियाँ नही, सुनीताएँ ही हो सकती हैं।''

''और कुछ?'' कातर हो उठी थी मानसी। अरविंद सच कह रहे थे। अरविंद के भीतर बसे सामत को उसके भीतर बैठी स्वाधीन स्त्री शायद स्वीकार न कर पाती। जब स्थितियाँ इतनी साफ हैं, तो मन जुडता क्यो है अरविंद से?

''अपनी इच्छा से जा रहा हूँ मै।'' अरविंद ने कहा ''यहाँ रहूँगा, तो तुमसे दूर रह नहीं पाऊँगा।''

''सिर्फ एक इच्छा पूरी करेगे मेरी?'' मानसी ने पूछा।

''नहीं कर पाऊँगा, मानसी।'' अरविंद ने हताशा-भरे स्वर मे कहा, ''बिना शराब पिए मैं सचमुच नहीं सो पाता। तुम होतीं जीवन मे तो शायद कोशिश भी करता।''

मानसी का मन हुआ कि लपककर रोक ले अरविंद को और कह दे कि उसे दूसरी औरत बनना मजूर है। अपने सारे स्वप्नो और स्वाधीनता को तिलाजलि दे सकती है मानसी, अगर अरविंद आधा ही उसका हो जाए।

पर ऐसा कह नहीं सकी मानसी। न उस रोज, न उसके अगले रोज और न ही उस वक्त, जब आटी के साथ स्टेशन चली आई थी वह—अरविंद को विदा करने। गाडी चली गई और अरविंद का हिलता हुआ हाथ दिखना बद हो गया तो आटी की गोद मे सिर छुपाकर किसी छोटी-सी बच्ची की तरह फूट-फूटकर रो पडी मानसी।

पटरियाँ

मालचद तिवाडी

सदैव, जब स्टेशन पहुँचा, गाडी रेगना शुरू कर चुकी थी। भागदौड म जो डिब्बा सामने आया उसी म चढ गया। डिब्बा थ्री-टायर शयनयान था। सुबह हुई-टुई थी। सवारियाँ इक्का-दुक्का उठ रही थीं। सदैव सकोच म घिरा हुआ इधर-उधर बैठने की ठौर खोजने लगा। एक केबिन म दो स्त्रियाँ दिखलाई दीं—माँ-बेटी। वे बीचवाली सीट गिराकर मुकम्मल तौर पर जगी बैठी थीं। सदैव से बैठते नहीं बना। बस चुपचाप खडा रह गया। थोडी देर बाद माँ ने कहा 'बैठ जाइए।'

सदैव सीट के कोने पर टिक-सा गया। बेटी खिडकी के करीब थी। शायद उसने एक उचटी-सी दृष्टि से सदैव को देखा। हो सकता है, न भी देखा हो। फिर सदैव के व्यक्तित्व मे ऐसा कुछ भी न था जिसकी झलक मात्र से आदमी की उपस्थिति दर्ज हो जाती है। बल्कि बात उलटी थी। माँ उसे बराबर देख रही थी। उसके बैठ जाने पर उसने भी अपनी बेटी की तरफ मुँह फेर लिया।

रेल अपने डिब्बो मे समाए हुए मनुष्यो ओर उनके तमाम खुले और सदेहास्पद रिश्ता से बेखबर अपनी लय-ताल का पीछा करती-सी भागी जा रही थी। सदैव ने सोचा किताब पढ लूँ। इसके लिए थोडा फैलकर बैठना अच्छा होता। जगह थी, लेकिन सदैव ने जैसे उसे समूचे केबिन मे खोजना चाहा। उसे

केबिन की हर चीज—सामने बर्थ पर सोता हुआ फूल-सा सुकुमार बच्चा, खूँटियो पर लटकते हुए फ्लास्क, रगबिरगी चादरे और हवादार तकिये, फर्श पर पडी कीमती सिगरेट की खाली डिबिया, खिडकी से सटी हुई मासल देह किन्तु तीखी आँखोवाली लडकी और अपने और उसके बीच बैठी हुई मध्य-वय स्त्री—एक सरल और सुनिश्चित गति म हिलती नजर आई। सारी गति म समाई हुई एक और बारीक गति ने सदैव को पकड लिया। उसने सोचा, यह लडकी इतनी अपनी-सी क्यो लग रही है ? याद नहीं आया कि पहले कभी देखा हो।

सहसा सदैव ने ध्यान दिया, इसका कारण सिर्फ लडकी की आँखे थीं। वे आँख न केवल धारदार थीं, बल्कि उनकी बरौनियाँ कुछ अधिक ही घनी और लम्बी थीं। लडकी आँखे झपकाती, तो उसकी बरौनियो के केश पर्दे के नीचे लगनेवाली झालर-से दिखलाई पडते थे। सदैव लुका-छिपी से, लडकी को बार-बार देखने लगा। उसे लगा, जैसे कोई खोया-सा दृश्य घर लौटने को भटक रहा है, कोई डूबी-सी लहर उछलकर फिर ऊपर आना चाहती है, खुलेआम, नदी के चौडे पाट पर, सरपट दोडने के लिए या कोई बासी-सी गध, जो बरसो बाद सदूक से निकलनेवाले कपडो मे बसी रहती है और अपने एक ही झोके म कितना कुछ साथ उडाए ले आती है। सदैव बेचैन हो गया, लेकिन अपनी बेचैनी का नाम-पता नहीं पा सका। हारकर उसने किताब निकाल ली। जूते उतार, पैर ऊपर खींच, पालथी मारकर किताब पढने लगा।

लडकी की माँ ने थककर पहलू बदला। सदैव पालथी मारे किताब मे समाधिस्थ था। लडकी की माँ ने देखा और अगले ही क्षण उसकी दृष्टि सदैव के जूतो पर जा पडी। वही धूल से अटे हुए, चाल के असतुलन से चपटाए हुए जूते थे। उस पर दोनो जूतो के बीच हमेशा की तरह डेढ फुट का फासला भी था, मानो दो हमशक्ल एक-दूजे से रूठकर मुँह फिराए पडे हो। जूतों क नीचे रेल का लाल मैला फर्श था, मगर लडकी की माँ की याद मे अपनी हवेली का चौकडीदार, चमचमाता चिकना गलियारा उभर आया। माँ को लगा, वह अभी झुक जाएगी और इन जूतो को करीने से जोडकर रख देगी।

"माफ करना, आप मास्टरजी नहीं हैं क्या ?" लडकी की माँ ने थोडी देर बाद सदैव से पूछा।

"मैं ?" सदैव अचकचाया और इधर-उधर देखकर बोला "नहीं मैं तो शोध अधिकारी हूँ। आप जानती हैं, शोध किसे कहते हैं ? मैं बताता हूँ, पुरानी बातो की पडताल किताबा की, कथाओ की, कहावता की, गीता की,

इमारता की और यहाँ तक कि पुरानी धूल और मिट्टी की भी। समझिए, एक तरह से कचरे से कीमत बनाने का रोजगार करता हूँ ।"

सदेव आदतन विस्तार से बताने लगा। लडकी की माँ सुनती रही और सोचती रही—वही है। तब भी ऐसे ही बोलता था। पढाता क्या था, लडकी को कहानी पर कहानी सुनाता रहता था। कागजा पर पेन से तस्वीरे बनाता रहता था—पेडा की, पशुओ की, पनिहारिनो की, पक्षियो की और यहाँ तक कि छोटे-छोटे कीडो और मकोडो तक की। तस्वीरो मे कहानियाँ होती थीं और कहानिया की तस्वीर खींच डालता था। पैसे एक घटे रोज के लेता, पर बावरा-सा बैठा ही रहता। पढाने मे ऐसे डूब जाता था, जेसे भजन मे मीरा। आखिरकार उसकी सास, लडकी की दादी आकर याद दिलाती, तो हमेशा कोई न कोई कहानी अधूरी छोडकर उठना पडता था। जाने के बाद बुढिया कहती, 'मास्टर क्या है, राम का जीव है। मेरा तो जी करता है, मे भी घटेभर सत्सग की बधी बाँध लूँ। कैसी-कैसी ज्ञान की कहानियाँ सुनाता है। मै तो काम विसरकर इसका पढाना सुनने लगती हूँ, काना मे इमरत घोल देता है मरा।'

सुनती तो लडकी की माँ भी थी पर अपनी सास से छिपकर। सीधे बोलकर तो उसने मास्टरजी से बात भी न की थी। अत्यत परपरावादी और खाते-पीते हिन्दू वैश्य-परिवार की जवान विधवा के अनुशासित जीवन का अभ्यास, पाँच बरस पुराना होकर सध चुका था। उसकी दृष्टि पृथ्वी से लगभग एकमेक हो चली थी। सास बहुत मुँहजोर स्त्री थी। उसी के मारे वह हर घडी भयभीत रहती थी। घनघोर उदासी के वे दिन सिर्फ अपनी इकलौती लडकी और सास के बीच बीत रहे थे। इन्हीं दिनो सास न जाने कहाँ से कह-सुनकर ऐसा गऊ-जात मास्टर खोज लाई थी।

मास्टरजी हवा के झाके की तरह निस्सग और निर्लिप्त भाव से आते और उसकी आठ साल की लडकी को पढाकर चले जाते। पहली बार उसका ध्यान मास्टरजी के जूता पर ही गया था। उन जूतो मे फँसकर कस्बे की जाने कितनी गलिया की रेत हवेली तक पहुँचती थी। मास्टरजी उन्हे खोलते भी ऐसे थे जैसे उनमे उनके पाँव नहीं बल्कि आत्मा फँसी होती थी जिसे छुटकारा दिलाने के लिए जूता को फेककर खोलना जरूरी होता। फिर ये रेत-सने पाँव बिना पोछे लेकर मास्टरजी गदरे की झक-सफेद चादर पर जा चढते और जितनी देर बैठे रहते उनके पास ही उनके पाँवा की छाप चमकती हुई दिखाई पडती थी।

एक दिन लडकी की माँ ने मास्टरजी के जूते करीने से लगा दिए। फिर

रोज़ लगाने लगीं। उसे उम्मीद थी कि किसी दिन मास्टर का ध्यान इस ओर जरूर जाएगा। बहुत दिन बीत गए, पर मास्टरजी ने इस बात पर गौर करने का कोई लक्षण नहीं दिखाया। निराश होकर लडकी की माँ ने कुछ दिन जूतो को ज्यो का त्यो छोडे रखा, पर मास्टरजी पर इससे भी कोई फर्क नहीं पडा।

एक अजीब-सी विवशता म घिरकर लडकी की माँ ने जूते सीधा रखना फिर शुरू कर दिया। लेकिन चादर पर पडे मास्टरजी के पाँवा के निशान वह जितनी देर सभव होता, उतनी देर बिना झाडे पडा रहने देती। कभी-कभी उसकी सास या हवेली की नाइन तुरन्त ही झाडन की फटकार से चादर झाड डालती, तो लगता, मास्टरजी की मौजूदगी मिटने की बजाय और गहरा गई है। लडकी मुग्धभाव से मास्टरजी की बात माँ के आगे दोहराने लगती। सो इस प्रकार मास्टरजी वहाँ से चले जाने के बाद भी उस घर म बने रहते थे।

लेकिन खुद मास्टरजी को उस घर मे सिवाय अपनी नन्ही शिष्या के और कुछ, जैसे दीखता ही न था। शायद ही उन्होने गौर किया हो कि घर म सिफ लडकी ही नहीं, उसकी विधवा और जवान माँ और बूढी दादी भी है। कोई है जो उसके जूते सबसे छिपाकर सीधे करता है और अपने हाथ से मलाईदार चाय बनाता है जिसे वे देहातियों की तरह सुडक-सुडककर पलभर म पी डालते हैं।

लडकी की माँ सोचती रहती थी कि जानवरो के दु ख-सुख तक की कहानियाँ सुनानेवाला क्या किसी इन्सान के दु ख को समझना भी नहीं जानता होगा ? वह सोचती और चुप रहती।

एक दिन लडकी ने बताया, ''कल से मास्टरजी की छुट्टी वो नहीं आएँग ।''

लडकी की माँ ने सोचा—लडकी मजाक कर रही है। मगर ऐसा ही हुआ। सास ने बताया—वह नौकरी करन बाहर चल गए हैं। इन बाता का 15-16 बरस बीत गए हागे, और मास्टरजी आज नजर आए है—अपनी उसी पुरानी धज म और कह रहे हैं कि मास्टर हूँ ही नहीं। ये जो उनकी मास्टरी की तस्वीरें मेरे अदर से निकल आई है, क्या बिल्कुल झूठी है ? लडकी की माँ उदासी मे घिरी-सी अब भी सोचे जा रही थी। आखिर उससे रहा न गया, तो बोली, ''आप शायद भूल गए हैं। आप हमारी हवेली मे एक लडकी को पढाने आते थे। मुझे तो सब-कुछ याद है। यहीं की तो बात है, जहाँ से आप गाडी म चढे। अब हम लोग कलकत्ता रहत है। आपको याद होगा, एक छोटी-सी लडकी थी सुप्यार। आप उसको ।''

"सुप्यार! हाँ-हाँ मुझे याद आ गया।" सदैव के जेहन मे अकस्मात् एक मासूम-सा बिंब उभरा, "वह गोल-मटोल, गुटल्ली-सी आप उसकी माँ हैं वह कहाँ है ?"

लडकी की माँ मुस्कुरा दी। उसने खिडकी के पास बैठी लडकी को पुकारा, "सुप्यार देख तो बेटा पहचान इनको ये तुझे पढाया करते थे। नमस्ते नहीं करेगी ?"

लडकी ने अनमने ढग से मुस्कुराकर हाथ जोडे और फिर खिडकी के बाहर देखने लगी।

"ये-ये, सुप्यार है ?" सदैव ने जैसे हिलोर लेकर पूछा, "अरे! सुप्यार, तुम भूल गई ? इधर, मेरे सामने देखो जरा तुम्हे याद है, एक दिन तुमने पूछा था इद्रधनुष क्या होता है! मैंने तुम्हे बादलो के राजा की कहानी सुनाई थी। क्या तुम वह भी भूल गई मैंने तुम्हे बताया था कि कोई भी दो मनुष्य कभी भी एक ही इद्रधनुष नहीं देखते हरेक को अपना-अपना अलग-अलग इद्रधनुष दिखाई देता है। और एक बार मैंने तुम्हे छह पैरोवाले ऊँट का चित्र बनाकर दिखाया था, तब तुम कितना जोर से हँसी थी और उस पग्गडवाले इत्रफरोश का किस्सा ।"

सुप्यार के ललाट मे सलवटे भरने लगीं। उसने कही से खींचकर एक पत्रिका निकाली और पन्ने पलटते हुए कहा, "सॉरी अकल मुझे कुछ भी याद नहीं। प्लीज, आप ममा से बात कर लीजिए।" कहते ही वह खिडकी से बाहर देखने लगी।

सदैव को लगा जैसे कोई अदृश्य गेद लुढककर आई है और उसके गले मे अटक गई है। हो न हो, पर शायद उसका अतस् इसी लडकी के जवान होने का इतजार कर रहा था—आह ।

उधर लडकी की माँ ने सदैव की तरफ देखा। सहसा एक खालीपन—किसी दीवार के अचानक गिरने से निकल आई जगह जैसा—उसके अतस् मे फैलने लगा। तो क्या वह एक लबी उम्र तक किसी पत्थर को देखती रही थी ? अतत पत्थर को पूजना ही शायद आदमी की नियति है।

ऐसा लगता था जैसे कुछ बेहद कीमती और नाजुक-सा अभी-अभी दोनो के हाथ से छूट गिरा और बिखर गया इद्रधनुष की तरह अपना-अपना और अजनबी-सा, जिसे बटोरने म कोई किसी की मदद करने को तैयार न था।

रेल बिफरी-सी पटरियाँ बदलती भाग रही थी।

बाढ़

कमल कुमार

घर क्या' 'महल था। वह कहाँ से काम शुरू करे क्या करे ?—असमजस ने ध्रुपद को जड कर दिया था।

"बटेर की तरह इधर-उधर क्या ताक रहे हो' ?"

कर्कश तान से ध्रुपद की जडता टूटी। कुछ पूछने की हिम्मत तो भी नहीं हुई। अपने को विश्वास दिलाता वह आगे बढा । गोरी चिकनी एडियाँ झम्म-से थमीं और फिर कमरे के परदे के पीछे गुम हो गईं। ध्रुपद चेहरे का ताप सह नहीं सका था, उसकी आँख पैरा पर ही टिकी थीं।

जगना ने बताया था—"सेठ बीस बरस पहले कहीं से एक कोपल ले आया था और यहाँ ईंट-सीमेट की महल-बाडी मे रोप दी थी। ऐसी लहलहाती बेल-सी भोली-भाली बच्ची थी। गिलहरी-सी फुदकती थी महल के अजायबघर मे। हर चीज को छूती-परखती—'ये तुम्हारा है सेठ जी' 'ये भी-ऽ ?' 'नहीं, अब सब तुम्हारा है।' 'मेरा-ऽ ?' हैरत से उसकी आँखे फट जातीं। *फिर वह लबे छिटके बालो को झटका दे कधे से पीछे फेकती लापरवाही* से जैसे 'यह कैसे हो सकता है ?' माली, नौकर, खानसामा 'जिसे देखती खींचातानी करती, बाँह पकडकर झूल जाती। सेठ बौखलाया फिरता था इसके पीछे-पीछे । मिसरानी ने जाना था कि सेठ गोद ले आया है। चला अच्छा

हुआ बच्ची की किलकारी खिली   । इतना बडा घर भुतहा तो नहीं रहेगा।

लेकिन एक रात सेठ ही ने धर दबोचा   । तब तक इसे कपडे भी पहनने नहीं आए थे। मिसरानी ने ही सँभाला था—खून से लथपथ क्या करती वह ? हाथ-पेर बँधे थे नौकरानी ही तो थी थोडी चूँ-चपड करती तो कोठी से बाहर होती। सीत पी गई वह मजबूर-सी। इसका तब दूसरा दौर शुरू हुआ था। चुपा गई थी एकदम। डरी-डरी बिटर-बिटर खिडकियो के काँच से परदा हटाकर ताका करती सुन्नम् सुन्न्। सेठ बडे से बडा डॉक्टर लाया—बेशुमार दवाइयाँ इजेक्शन। पढाने के लिए घर पर ही टीचर रख दी। दिल लगाने के लिए मिसरानी की लडकी सुभागी भी यहीं रहने लगी थी। सूरज निकलता छिपता बरस पर बरस बीतते गए—अब क्या । बेचारी है तो है न कोई आगे न पीछे। सेठ चार-चार, छ-छ महीने बाहर रहता है—काम के सिलसिले मे। सुना तो यह भी है कि सेठ ने हर जगह अपना अलग इतजाम कर रखा है। जगना कई बार गया है सेठ के साथ बाहर। शिमले म तो कोई मेम रक्खी है   । कहने को तीन-तीन औरते लेकिन बच्चा एक से भी नहीं   । सुना है सेठ मे ही खराबी है। यह बेचारी यहाँ पडी तो पडी रही बैठी तो बैठी रही हँसती तो हँसती गई बेजान मूरत-सी। बीच मे ठीक हुई भी तो क्या। बीमार तो अब भी रहती है। चम्पा-सी देह पीला गई है। सीढियाँ चढती तो थरथराने लगती है ओर अभी उमर भी तो कुछ नहीं। बडा तरस आता है लेकिन हम ठहरे भाडे के नौकर। क्या कर सकते हैं।'' ध्रुपद जगना की जुबान से सब देख-सुन रहा था।

उस दिन सफाई करते काँच का गिलास सिरहाने की तिपाई से नीचे आ गिरा। वह हडबडाकर उठ बैठी।

''मालकिन गलती हुई सफाई कर रहा था।''

''कर।'' आवाज मे उदासी थी। वह फिर लेट गई थी आँखे मूँदे।

''मालकिन आपकी तबीयत ठीक नहीं है क्या ?''

उसने सुना नहीं था शायद। उसके हाथ काम करते-करते रुक गए थे।

''आपकी तबीयत खराब है ना ?''

उसने आँखे खोलीं पलभर देखा फिर मूँद लीं।

''आपके वास्ते चा बना लाऊँ सुभागी तो कहीं नजर नहीं आ री ''

''सुभागी छुट्टी पर गई है '' आँखे बद थीं सिर्फ हाठ हिले थे।

''जब आपकी तबीयत ठीक नीं थी तो क्यूँ दे दी उसे छुट्टी ?''

"उसका बच्चा बीमार है बुखार है उसे कई दिनो से।"

जगना कहता था जब उसका बच्चा बीमार हुआ था तो क्या नहीं किया इसने। छुट्टी, दवा के पैसे तनख्वाह के साथ मे। क्वाटर मे खुद आ गई थी। आप ही बुखार से तपते बच्चे को गोद मे उठा लिया कधे से लगाए डुलाती रही। माथा छुआ छाती पर हाथ फेरा—'अरे इसे तो माई का कोप है। छोटी माता है ले सभाल मैं आई ।' मुनक्का इलायची का उबला पानी खटोले पर धुली चादर सारे क्वाटर की काया पलट दी। 13 दिन तक सेवा की। फिर आप ही देवी का मत्था टेकने ले गईं। आकर देवी माँ की कडाही की। मैंने और पत्नी ने इसके पैर पकड लिये। छुडाकर चली गई ठडी-ठडी आँखा से देखती। फिर इसी ने खर्चा बाँधा था सुग्गो का। स्कूल-कॉलेज पढाया सेठ से बोलकर काम पर लगवाया अब भी वह घर आता है तो पहले इसी के पैरो मे असीस लेने आता है।

उसकी आँखे झपी थीं। "मालकिन, मै बना लाऊँ चा-ऽ" तनिक-सा हिली वह। आँखे खोलकर स्थिर दृष्टि से देखा उसकी ओर—"चा-ऽ बना लाऊँ आपने कुछ खाया बी नी होएगा ।"

वह मुस्कराई—"तू बनाएगा आती है तुझे चाय बनानी ?"

"जी-ऽ हाँ-ऽऽ।" उमग के परो पर झूलता चाय बना लाया, खाने को भी। छोटी टेबल खींचकर ट्रे रख दी। वह धीरे-धीरे चाय पीती गई मुस्कराती रही । महीने से ऊपर हो गया था उसे काम करते आज पहली बार देखा उसे मुस्कराते-बोलते।

"जगना के ही गाँव का है तू भी ?"

"जी-ऽ।"

"कब आया गाँव से ?"

"इबी-इबी काई चार महीना होए "

"पहले तू " बालत-बोलते रुक गई वह। एक सिसकारी भरी—और पलँग पर औंधी हो गई थी—दर्द की काली छाया उसके चेहरे को स्याह बना गई थी।

"क्या हुआ मालकिन ?"

" "

"दुकान से मुशीजी को बुला लाऊँ या दुर्गाप्रसाद जी को ले आऊँ या डागदर साब को "हडबडा गया था वह।

''नहीं-ऽ   जरा-सा तू ही पास बैठ जा ध्रुपद।   हाथ-पैर दर्द से सुन्न हुए जा रहे हैं।'' उसका दर्द ध्रुपद के भीतर पिघल सीसे-सा बहता गया। जगना ने कहा था—बेचारी बीमार होती है तो पड़ी रहती है—अकेली की अकेली   नौकरों-चाकरों के सहारे। सेठ जी का तो महीनों पता नहीं चलता। आज तो सुभागी भी नहीं थी। कुछ तो करती वह। माथा सहलाती   हाथ-पैर दाब देती   । रहा नहीं गया तो वह पलँग की पाटी तक खिसक आया था—''मालकिन मैं आपके हाथ-पैर चस्स दूँ   थोड़ी जान आएगी थारे मे   ।'' उसने देखा, उसकी दृष्टि भीतर तक छेदती गई और वह फिर दर्द के दरिया मे डूब गई।

''मालकिन, तलवों पर तेल चस्स दूँ?''

बड़ी निरीहता से उसने देखा—''न-न कहीं   न, हाँ   ।''

वह खुद ही रसोई मे से ढूँढ-ढाँढकर, सूँघ-साँघकर कड़वा तेल निकाल लाया था। जाने कौन-सी हिम्मत थी—खुद ही पैरों को उठाकर तौलिया बिछाया   तलवे मलने शुरू किए। पैर बर्फ की तरह ठंडे थे   मलने से गरमाने लगे थे। वह निश्चल-सी लेटी थी।   पता नहीं जागी थी या सोई। कुछ देर बाद हलचल हुई उसकी निर्जीव देह मे। ध्रुपद पुरस्कृत हुआ   हिम्मत बढ़ी।

''लाइये, अब हाथ दीजे।''

अच्छे बच्चे-से उसने हाथ बढ़ा दिए। हाथ भी बर्फ की तरह सफेद और ठंडे थे। मालिश से गरमाए तो वह उठ बैठी थी—''तू क्यों अपनी जान हलकान करता है ध्रुपद? सेठ तुझे जिसके लिए पैसे देता है, वही काम कर ना।   सच ध्रुपद जब दर्द होता है तो जी करता है कि सामने दीवार से ये कटारी खींचकर खोभ लूँ।''

''ना-ऽ   मालकिन, ऐसा न कहो।'' उसकी दृष्टि काँटे-सी चुभी जा रही थी भीतर   । वह हटना चाहता था—''आपको आराम आया—देखो उठके बी बैठी हैं आप। मैं रोज चस्स दिया करूँगा   फिर देखना, आप कित्ती जल्दी ठीक होएँगी   ।''

ध्रुपद सारा दिन एक अजीब-सी उमंग में उड़ता रहा। सारे जिस्म में स्फूर्ति-सी जग गई थी। रात मे खटिया पर लेटा आकाश के हर तारे में मालकिन का चेहरा झिप-झिप कर रहा था। कैसी कोमल छू थी   पिंडलियाँ कैसी गोरी   एड़ियाँ गदराई   उँगलियाँ पखुरियाँ-सी थीं   । मालकिन अच्छी

है बहुत अच्छी। कितनी अकेली भी है। देवी-सी। कैसा ओप है चेहरे पर। य तो बीमारी ने कांति फीकी कर दी है नहीं तो। अबकी बेर गाँव जाएगा तो भूतनी बाबा से मंत्र पढवाकर बीमारी ठीक करने की भभूत लाएगा वह। उसने अपने हाथो को देखा—एक हाथ से दूसरे को बारी-बारी छुआ—सच, उसने इन्हीं हाथो से मालकिन के पैरो के तलुवो और हाथो को चस्सा था। तब तो कुछ होश नहीं था उसे, लेकिन अब मन मानता ही नहीं था। एक गुदगुदी-सी हुई अतर् म। कलेजे म हौल-सा पडा गटका-सा फँस गया गले म । देर रात गए नींद आई तो सवेरे देर तक सोता पडा रहा।

दरवाजा उढका था। कौन जाने आज सुभागी लौट आई हो। सहमत कदमो से भीतर आया। वह तकिये के सहारे अधलेटी मुद्रा म थी। कधा पर बाल लहरा रहे थे—एयरकडीशनर की ठडी लहर फूलो को छूकर कमरा महका रही थी। शायद बहादुर अभी-अभी बदल गया था फूल। लाल और सफ़द—एक ही डाली म ऊपर से नीचे तक क्रमवार गुँथे थे। अपन गाँव म तो उसने कभी ऐसे फूल नहीं देखे थे। खटके से खबरदार कमरे के बीचोबीच आ गया था। दरवाजे की ओर उसकी पीठ थी, खटका भी नहीं हुआ, तो भी उसने आवाज दी था

''ध्रुपद, तू आ गया । जा पहले सुभागी क क्वाटर म जाकर पूछ आ उसका बच्चा कैसा है। कुछ चाहिए तो नहीं उसे? मैं तो खुद ही जाती लेकिन तबीयत ही ठीक नहीं।''

''आज भी नहीं आई ना। मालकिन, उसे आपका खयाल थोडे ही है। मैं आपके लिए चा-ऽ '' ध्रुपद अपनी रौ मे था।

''तू जा ध्रुपद अभी। डॉक्टर को ले जाना साथ उसके बच्चे को देख आएगा ''

भारी कदमो से वह बाहर निकला। दोपहर-पूर्व लौट आया था।

उसका दर्द शायद बढ गया था या अलस था जो उसक अगा को थपथपा रहा था। उसकी पलक मुँदी थीं—पलको पर दद के कोहरे की परत, गालो पर आँसुओ का गीला स्पर्श । आँखा के गिर्द स्याह घेरे उभर आए थे।

''मालकिन पैले तलवे चस्स दूँ या आपके वास्त चाऽ-नाश्ता बना लाऊँ?'' कोई उत्तर न पाकर स्वय को आश्वस्त किया। धीरे-धीर उसक तलवे, उसकी कच्ची करारी पिंडलियाँ अपने हाथो से सहलाने लगा। उसकी भरपूर छुअन—मन म आह्लाद-सा जगाती जाती थी। वह जान गया था—

उसका अकेलापन दहशत बनकर उस पर छाया हुआ था जिससे जूझता वह अकेली क्लात थी। उसके चेहरे पर फीकी अरणाई फैली थी। साँस की उठान व गिरान के साथ बदन स सगीत की लहरियाँ फूट रही थीं। उसने जाना था कि आदमी व मेज-कुर्सी म फर्क हाता है। उसकी त्वचा की कोमल छुअन स ध्रुपद का बदन एठता जा रहा था।

"ध्रुपद "उसने आँख खोलीं। उसकी आँखा के क्षितिज म सूरज व चाँद की परछाइयाँ एक-साथ थरथरा उठीं।

"लो-ऽ ज़रा उठाओ तो-ऽ!" उसन लटे ही लेटे हाथ बढाया।

काँपते हाथो से उसन उसकी हथेली थाम ली।

"सहारा दो !" बुदबुदाई थी वह।

तकिये को पीठ के पीछे लगा दिया था।

"तुम बैठो यहाँ-ऽ!" गर्दन को झुकाकर उसने अपना सिर उसके कधे पर टिका दिया । लहरा के हचकोलो पर हौले-हौले उतराती लयबद्ध-सी देह । उसकी साँस की सुरसुरी वह अपनी गर्दन पर महसूस कर रहा था। हर क्षण उत्तेजना मे काँपकर बिखर जाता। अगला क्षण—दूने जोश का होता । नजदीकी ने शब्दा की डोर काट दी। उसक हिलते-काँपते हाठ उसके बिल्कुल करीब थे। इस आक्रमण ने ध्रुपद को पस्त कर दिया था। उसकी बरौनियो म और ऊपरले हाठ पर बडे-बडे पसीने के मोती उभर आए थे। उसकी पसीजती ढरकती देह झकझोरने लगी। उसके बोझ और ताप की निरीहता को महसूसता हुआ वह हाँफने लगा था। भीतर से गले तक एक भभका-सा आया। धाती की सिलटियो के बाच उसकी टाँगे थरथरा रही थीं। अस्त-व्यस्त वस्त्रा मे उसकी देह का सर्वेक्षण करते उसने पाया था—जैसे उसके भीतर वासना की प्यास का मीलो फैला एक रेगिस्तान था जिसमे रेतीले सूनेपन के आईने मे वह बीस बरस तक सिर्फ अपने को ही निहारती रही थी। भूखे चुम्बना की बौछार धुएँ की लपट भीतर उठ रही थी। रोम-रोम म असहायता का सुन्न अहसास था। छाती के नीचे उसके उरोजो की नोक चुभ रही थीं। वह बेतहाशा उसके भीतर सिमटती जा रही थी। उसका अग-प्रत्यग सर्पिनी के फन-सा फुदकता था उसके पुसत्व को चुनौती देता हुआ। वह उसके शरीर को गीले आटे की तरह लथेडने लगा गारे को घोल-सा मथने लगा। मथते जाने के सुख की पीडा म वह हल्के कराह जाती। फिर एकबारगी छटपटाकर वह उसके ऊपर ढुलक गया।

चेता तो' 'पर स्थिति की भयकरता का ध्यान कर जीभ तालू से चिपक गई थी। टाँगे लडखडा गई। उठने की सामर्थ्य भी जाती रही। धुँधली बेचैन दृष्टि से वह तनिक मुस्कराई' आश्वासन की किरण फूटी 'फिर उसकी नजर सामने दीवार पर टँग गई। आँखे खोले वह चित्त पडी थी । बाल बिखरे। अस्त-व्यस्त वस्त्र, आँखे तपतीं । इस सबके बाद भी उसका चेहरा निर्विकार था।

''ध्रुपद' 'जाओ-ऽ।'' उसकी आवाज राख की तरह ठडी व बेजान हो गई थी।

अपराध-बोध की वेदना उसके भीतर हर पल काँटे-सी कसकती थी। कोठी जाने की बात सोचकर ही उसकी हिम्मत पस्त हो जाती। दिन पर दिन बीतते गए' 'तीन महीने गुजर गए। वह दुकान पर ही लगा रहता। साँझ को घर लौट आता। मुशी से कई बार पूछा था—मालकिन कैसी है ?

''आजकल खूब अच्छी है—सुभागी कह रही थी—खाने-पीने भी लगी थी। घर का काम-काज भी खुद देखने लगी है।'' मुशी कान मे फुसफुसाया था, ''सुना है मालकिन को दिन चढ गए हैं। भाग जाग गए कोठी के! इतने बरसो बाद' 'यह करिश्मा! सुनकर सेठ भी दौडा आया था' 'कुछ दिन रुककर चला गया।''

बरछी-सी बात भीतर खुप गई। सिर से पैर तक काँप गया था। कोठी जाने की 'मालकिन को देखने की इच्छा और भी भीतर धँस गई। तभी एक दिन मालिकन ने स्वय बुला भेजा था।

यूँ ही चलता गया जीवन। चुबक की कशिश-सी दिन-रात सालती थी। ज्वार उठता 'सूरज के गोले-सी देह पिघलती, जिसकी गर्मी भीतर ही भीतर' 'उसे सोख लेती। जीवन बदरग विकृताकृति बनकर रह गया था। ध्रुपद द्वारा परिरंभित देह म क्षणिक क्लान्ति के बाद मीठी ताकत का अहसास हुआ। जीवन के जीर्ण-शीर्ण परिदृश्या-सी ढेरो मधुर अनुभवो की छवियाँ झाँकने लगीं। ध्रुपद के ससग से अनदिख' अछूते असख्य फूलो का पराग गहन *आत्मीय राग बन जीवन मे छा गया था।* चद पला मे ध्रुपद के साथ ज़िंदगी के रतिरग के विभिन्न क्षितिज खुल गए थे। ज़िंदगी की धडकन यौवन की उमग जो निश्चेष्ट, आत्मस्वीकृत देहार्पण से कभी उद्वेलित नहीं थी—आज जागृत वासनाओ कामनाओ की वेगवती उमगो की उफनती-दमकती कौंध ने उसके तन और मन की प्रखर प्यास को तृप्त किया था। सूखे रेगिस्तान को लहलहाया

था। ध्रुपद के जाने के बाद वह उठी। दृष्टि स्वय सलज्ज हो उठी। जीवन म नया स्वाद, नया बल ओर विश्वास तथा जीने की ललक जाग उठी थी। सबसे रोमाचक, उत्तेजक, सवाधिक तृप्तिदायक आत्मसमपण का परिपूण आनद देनेवाले इन क्षणो म पूरा तन व मन विद्युत की लहरा पर जाग उठा था। बरसा तक कुरेदती असहायता सेठ की कोठी की कीमती उपलब्धि मात्र बने रहन की असहनीय पीड़ा की परछाइयो का ध्रुपद के प्रेम-अनुभव ने नई आशा की मध्याह्न-किरणा म बदल दिया था।

चोर-सा चौकन्ना वह कोठी पहुँचा। हर खटके पर लगता सेठ के लठैत घेरे हैं—दो पल म हुई कपाल क्रिया। सभी कुछ यथावत् था। बाहर बहादुर पाइप पर उँगली दबा पानी की पिचकारियाँ उडा रहा था। अपना करतूत उसके चेहरे पर पढने की कोशिश की उसने देखकर भी नही देखा। ऊपर जाने को मुडा तो सुभागी से टकराया—"क्यो, तुम्हे साँप सूँघ गया था? इतने दिन कहाँ मरे रहे? पेट मे रोटी पडते ही रग बदलने लगते हो। आफिस मे बैठे-बैठे स्टूल तोडते हो। जगना तुम्ह घर के काम वास्ते अपनी जगह नहीं लगाकर गया था।

सुभागी की रार ने थोडा आश्वस्त किया।

"मेरी तरफ बिटर-बिटर क्या देख रहा है बोल?"

"मालकिन ऊपर है ?"

"आ गया तीन महीने बाद मालकिन के काम पर। मुआ तू कोई माती का दान करके आया था पिछले जन्म मे। तेरे वास्ते मालकिन ने सेठजी स सिफारिश की तुझे बम्बई वाले दफ्तर म भेजने की। काम कुछ भी नहीं खाना पीना रहना सब मजे मे "

"ध्रुपद, ऊपर आ तू-ऽ ।" मालकिन की आवाज ताये सीसे-सी कानो मे चू पडी। कुछ पल देखना सुनना-समझना सब रुक गया । नौकरी की चिता अब नहीं थी। जान की भी चिंता जाती रही थी। पलँग पर अलसाई-सी बैठी थी। उसे देख हँसी तनिक-सा—धुप्-धुप् करती आँखे उमडते हुए हाठ ओस-भरी पत्तियो-से। वह ठडे भाव से उस उजास को ताकता रहा

"मैं गाँव वापस जाऊँगा "

"अच्छा! आओ-ऽ बैठो यहाँ।"

" "

''बैठो ऽ।''

मालकिन हाँ मालकिन ही तो थी—निर्विकार निर्द्वंद्व स्वयसिद्धा देवीरूपा अम्लान अक्लात । उसके तेज से उसकी आँख झप गईं ।

''बैठो-ऽ तो-ऽऽ वहाँ नहा, यहाँ-ऽ। गाँव वापस जाओग ?''

''जी-ऽ गाँव से चिट्ठी आई थी बाढ फिर आई है—घर, मवेशी खेत, खलिहान सब बह गया।''

''घर के लोग ?''

''कई दिना तक छत्तो, पेडो पर अटके रहे पानी उतरा तो वे भी उतर आए है। लेकिन अब खाएँगे कहाँ से ? खेत्ता म तो इबी भी गोड्डे-गोड्डे पानी खडा है। कद उतरेगा पानी कद बाहे, जोते-बोए जाएँगे खेत, क्या पता ?''

''कौन-सी नदी पडती है तेरे गाँव म ?''

''नदी नहीं मालकिन, मारकडा है । गर्मी मे तो पिचक जावे और बरसात माँ यूँ ठाठाँ मारे के पूछो न। वो तो पटवारी रामभरोसे की मेहर है जिसकी वजह से गाँव बसा है इब तक। इस गाँव पर तो देवी का साप है। मारकडा जद चढै तो पटवारी सोने का ऊँट हाथ म लेकर धारा मे खडा होजै और मारकडा मुँह फेर लै ।''

उसके अदर मारकडा ठाठे मारने लगा था—''कौन-सा गाँव है तेरा ?''

''थनसेर के पास कनिपला ते थोडा-सा अग्गे सिंघोनी।''

लगा जैसे वह सूखा पत्ता हो गई पीला जर्द।

''घर कहाँ है तेरे ?''

''बावडी के पीछे।''

''बावडी के पीछे ?'' वह काँप रही थी।

''जी-ऽ चौधरी के खेत हैं न-ऽ ''

''चौधरी के खेत ?'' उसकी आँखे दूर कहीं देख रही थीं—दूर-दूर तक खेत ही खेत थे। पुल क बाद अदरवाले रास्ते पर बावडी के पीछे-पीछे कच्ची ईंटो के मकान की कतारे थीं परे जाकर परली तरफ जमींदार और पटवारी की पक्की हवेली थी।

''जीऽ खेतो के बाद बरगद के पेड से लगा एक मदर है ''

''मंदिर ?''

''जी-ऽ माता का मदर है।''

उसके कान ही नहीं, सारे शरीर म मदिर की घटियाँ टुनटुना रहा थीं। नन्ही दुल्हनिया का गौना करके लाए तो वहीं मत्था टेका था 'लाल-पीली घघरियो का झुरमुट गाता जाता था। बीच मे सिर पर केले के पत्ता की घडौंची बनाकर कलस धरे दुल्हनिया जाती थी' ।

''मदर के दूसरी तरफ पीपल का बडा पड है' ''

वह अन्तर्ध्यान हो गई—पीपल के पेड पर सिंदूर लगाकर मत्था टेका था। दूध चढाया 'चावल चढाए 'रोली का टीका लगाया 'सदा सुहागिन हो' की तान खिंची

''थोडा आगे 'कच्चे-पक्के मकानो की कतार हैं'

''फिर ?'' औरत गाती जातीं 'खिद्-खिद् कर हँसती जातीं 'हुजूम पगडडी से होकर कच्चे-पक्के मकानो के सामने रुक गया था।

''वहीं—लाडू ताया 'बिंदा मौसी, सुरस्ती चाची का घर है ''

लाडू ताया—बिंदा मौसी—सुरस्ती चाची 'सारे खडे थे दरवाज पर। सुरस्ती चाची ने दरवाजे पर तेल चौआ 'तो दुल्हन अदर आई। 'सास का बजाय बिंदा मौसी ने वार के पानी पिया।

''उसक साथ ही चौधरी क घर ''

गाँव मे जानलेवा हैजा फैला तो चौधरी के घर से चोधराइन और बडे लडके की बहू को भी लील गया । घर का चूल्हा ठडा । सुरस्ती चाची या बिंदा मौसी आए तो चार-छ टिक्कड सक जाए, लेकिन दुधमुँहा चिऊँटा 'उसका क्या हो ? 'पिपली के मगरू ने 'कन्यादान के लोभ मे नौ बरस की छमिया को ब्याह भी दिया आर गौना भी दे दिया—'जा कुडी अपने घर कन्या का दान 'सुरग का मान ।'

''चौधरी के घर-ऽ क्या हुआ वहाँ ?''

''जी मालकिन, चौधरी के बडे लडके का चिऊँटा 'बदकिस्मत चिऊँटा।''

चिऊँटा 'दुल्हन को घेरे गाँवभर की बहुएँ और छोकरियाँ खडा थीं और कोई उसके गहने छेडता, कोई कपडे। नौ बरस की छमिया नींद व गर्मी से बेहाल थी। गोद-भराई की रसम हुई। सुरस्ती चाची ने चिऊँटे को छमिया की गोद मे डाल दिया

''चिऊँटा के बाप ने दूसरी शादी तो कराई पर खुद चल बसा 'फिर रह गया अकेला बदकिस्मत चिऊँटा ''

शादी के पद्रहवे दिन चौधरी का बडा लडका भी हेजे से ये जा वो जा । पर छमिया को क्या परवाह थी। भभीरी-सी घूमती सारे गाँव म चिऊँटे को बगल मे दबाए लुकन-मीटी ऊँच-नीच तोबे-तोतडा खेलती मस्त। चूल्हा फूँकना नहीं आया, सुरस्ती चाची से गाली खाती चिडिया-सी मौका पाकर उड जाती चिऊँटे को चिपकाए। चौधरी भी हार गया, सोचा—चिऊँटा तो पल जाएगा छमिया की गोद मे। चूल्हा वह खुद फूँक लेता।

''हाँ मालकिन नौ बरस की छमिया गोद मे चिऊँटे को चिपकाए रहती ऐसे भी ठीक था, पर गाँव मे फिर बाढ आई—खेत, खलिहान, जमीन खडी फसले सब डूब गईं और छमिया भी।''

''छमिया भी ?'' कलेजा मुँह को आ रहा था उसका।

''जी मालकिन।''

छमिया ही कलमुँही मुँहनासी थी आते ही अपने आदमी को खा गई—अब सारे गाँव पर देवी का कोप यह इसी मुँहझौसी का पौडा हे। छमिया चौधरी के साथ-साथ चली जाती थी। घर म कुछ नहीं रहा दाने-दाने को मोहताज। चिऊँटा को उस दिन सुरस्ती चाची ले गई थी। छमिया छोडती तो न थी, पर चौधरी ने तोडकर चिऊँटे को उससे अलग किया था।

''पानी की धार तेज थी छमिया का पैर फिसल गया सँभली नहीं—बह गई।'' ध्रुपद ने बताया—''जहरीली नीली स्याही से उसका चेहरा पुत गया। चौधरी छमिया का हाथ थामे चले जात थे। सारा गाँव छोटे-छाटे टापुओ मे बदल गया था—कहीं रास्ता मिलता, कहीं पानी के बीच से चलकर जाना पडता। गाँव की सरहद पर राहत-कार्य वाला की जीप खडी थी। चौधरी और उनम कानोकान कुछ हुआ। अँधेरा घिर आया था साफ-साफ कुछ दिख नहीं रहा था। चौधरी ने रोती-कलपती छमिया को जीप म बिठा दिया। छमिया हाथ-हाथ उछली पर चौधरी पत्थर की मूरत बना खडा रहा। जीप उलटी दिशा मे दौडती जा रही थी। रो-रोकर छमिया का हलक बैठ गया। सुबकियो की लय थककर उसकी छाती मे सो गई।''

''फिर-ऽ ?'' वह दम साधे थी।

''चौधरी ने बहुत हाथ-पैर मारे। छमिया को बचा नहीं पाया थक-हार रुआँसा घर लौट आया था। छमिया का ही पौडा टला तो चौधरी के घर अन्न-धन की बरसा हुई। चार-छ बोरी धान तो राहत-कार्य वाले ही दे गए थे।''

"और वो चिऊँटा?"

"चिऊँटा-ऽ " ध्रुपद हँसता गया हँसता ही गया

"सारी रामैन यो सुनादी मालकिन, इब पुच्छो आप चिऊँटा " वह हँसते-हँसते लोट-पोट हो गया, "चिऊँटे के जब पर निकले तो अभागा सैर की ओर भागा। गाँव की सरहद पार करने से पेले ही मदर रागी बावा ने चिऊँटा का नामकरण कर दिया था बिना मन्त्र पढे बिना बामना को भोज दिए—ध्रुपद।"

जैसे गाज गिरी हो अतीत की परछाइयाँ पेतनी-सी घेरकर खडी हो गईं। कलकित हीनता उसके भीतर उबकाई लेने लगी। उसकी उजाड दृष्टि उस प्रेतनी पर थी जिसकी शिरा-शिरा मे कोख से जन्मे न सही गोद म खेले बेटे द्वारा परिरगित देह पर कलकित वासना के करोडो घिनौने घाव उभर आए थे। जीने की लालसा कोख म अकुरित—आसक्ति व ममता के आनद को लाँघ दूर-दूर होती जा रही थी। उसके जीवन की रुद्ध गति जो स्नेहसिक्त स्पर्श की पूर्ति पाकर जी उठी थी, आज वही खडित नैतिकता के जहर से सूखती जा रही थी। उसके प्राण निबिड जिंदगी के घेरे से बाहर आने को छटपटा रहे थे। उसकी आँखो मे अवर्णनीय-दुर्वह अपराध-वेदना अधकूप-सी साकार हो गई थी। वह लाश-सी स्थिर थी। उसकी आत्मा प्रेतनी-सी बरसो पहले से भटकती जमीन आसमान दोना क अन्याय से पीडित अन्यायकर्त्ता को खोज नहीं पाई थी। सुन्न देह मे तीखे जहर की लहर उठी। झट-से उठी। दीवार के क्रॉस को काटकर कटार निकाल पेट मे घुसेड ली। खून की बाढ से एक हिलोर ध्रुपद के मुँह-कपडा को लथेड गई। 'है-हें ' करता वह एकबारगी पेट फाडकर चिल्लाया और जड हो जमीन से चिपक गया।

अब वह बेहोशी की बाढ मे बह चली थी—एकदम नि सहाय। शायद बेहोशी नहीं थी। जीवनरूपी बाढ मे हिचकोले खाती डूब रही थी, उतरा रही थी। बचपन से लेकर अब तक के सारे धूल-धूसरित चित्र उसके सामने कौंध रहे थे विलीन हो रहे थे। अनियत्रित बाढ के थपेडा ने उसे हर मोड और हर पडाव पर रौंदा था और अब यह एक और क्रूर उपहास। वह मरने-मारने पर आ रही थी—अपने को, ध्रुपद को।

दो घटे की शिथिल-मरणासन्न अवस्था।

ध्रुपद उनके मुँह-माथे और आँखा पर ठडे पानी के छींटे दे रहा था। पूरे

हँसी की परतें

तड़ितकुमार

एक छोटा-सा मैदान। मैदान से सटा एक बडा मकान। मकान मे कई कमरे। सैकडो कमरे। किसी एक कमरे के खुले दरवाजे से अन्दर एक और कमरा दिखाई पडेगा, फिर एक और, एक और कमरा का विशाल समुद्र। हर कमरा दूसर स अलग। रहनेवाले प्राय एक-दूसरे के लिए अजनबी, अपरिचित। किसी के घर कोई मरने पर ही शायद अगले कमरे मे रहनेवाले को पता लगता होगा कि वह मरा हुआ आदमी कभी उसका जिंदा पडोसी भी था।

उसी कमरो के समुद्र म एक कमरा। उसम रहनेवाले तीन एक पुरुप यानी मोना का बाप, एक स्त्री यानी मोना की माँ और एक आठ साल की लडकी यानी मोना खुद। मोना फ्राक पहनती है और आजकल स्कूल भी जाती है। जब मोना का बाप उसकी माँ को पीटता है, मार खाकर माँ फर्श पर गिर जाती है तो मोना चुपके-से दरवाजे के पास खिसक आती है फिर धीरे-से कमरे से निकल जाती है। सीढियाँ उतरकर मकान से सटे उस मैदान के एक काने म जहाँ मकान की दीवाल खत्म होती है, चुपचाप खडी हो जाती है। वहाँ बच्चे खेलते होते हैं। मोना नही खेलती, वह खेलना चाहता है।

वैसे बाप का पीकर घर लौटना, माँ को बेधडक पीटना, माँ का बेहोश

हो फर्श पर गिर जाना मोना के लिए कोई नई बात नहीं है। मुश्किल यह है कि इन सारी बातो म मोना किसी का पक्ष नहीं ले पाती, जबकि वह समझना चाहती है कि बाप और माँ म से दरअसल कौन दोषी है, लेकिन मोना समझ नहीं पाती।

आजकल उसका बाप उसकी माँ को पहले से कहीं ज्यादा पीटने लगा है। जिस दिन से वह आदमी इस कमरे मे आने लगा हे, बाप का माँ को पीटना भी बढ गया है। पहले दिन वह आदमी मोना के बाप के साथ ही इस कमरे मे आया था। वह आदमी मोना को बहुत अच्छा लगता है। इसलिए नहीं कि वह कभी-कभी मोना के लिए बिस्कुट या लाजेस लाता है, बल्कि इसलिए कि वह आदमी जब भी आता है, बहुत हँसता है, कभी-कभी मामूली-सी बात पर हँसते-हँसते लोटपोट हो जाता है।

मोना को हँसना अच्छा लगता है, लेकिन वह हँसन से बेहद डरती है। हँसने से उसका चेहरा अजीब ढग से विकृत हो जाता ह। नथुने फूल जाते ह, मुँह फैल जाता है, सामने के दो बडे-बडे दाँत बाहर निकल आते हैं। अजीब-सा डरावना चेहरा बन जाता है। अपनी हँसी के बारे म ये सब बात उसे दूसरा से मालूम हुई है। उसे हँसते देख दूसरो की हँसी बढ जाती है इसलिए मोना हँसने से डरती है, हालाँकि हँसना उसे बहुत अच्छा लगता है। जब किसी बात पर दूसरे बच्चे या बडे लोग हँसते हैं तो उसे भी हँसी आती है वह हँसना भी चाहती हे। लेकिन दम साधकर वह हँसी को आने स रोकती है और तब उसका चेहरा कुछ ऐसा बन जाता है जेसे वह रोने-रोने को है, जबकि वह रोती नहीं महज हँसी को रोके होती है। कभी-कभी मैदान से सटी उस दीवाल की आड मे मुँह छुपाकर मोना अकेले मे हँसन की कोशिश करती है ऐसी हँसी हँसने की कोशिश करती है जिसम उसका चेहरा विकृत न हो नथुने न फूल जाएँ, दाँत बाहर न निकल। लेकिन उसे लगता है कि हँसने की हर कोशिश मे उसका चेहरा बार-बार विकृत हो जाता है और तब उसे सचमुच रोना आता है वह रोती है।

मोना ने देखा है कि जब उसका बाप माँ को पीटता है तब बाप का चेहरा भी भयानक राक्षस की तरह विकृत हो जाता है। भौंह बहुत ऊपर तक चढ जाती हैं आँखे बेहद फैल जाती हैं पीले-पीले कई दाँत बाहर निकल आते हैं। मोना को लगता है कि गुस्से म शायद उसका बाप भी हँसता है।

माँ को पीटते वक्त मोना का बाप लगातार माँ मे सवाल करता जाता

है—'बोल, वह स्साला हरामी का बच्चा कब आया था? बोल स्साली कुतिया, वह कब आया था? रण्डी की आलाद कहीं की।' माँ चुप रहती, कुछ न बोलती और मार खाते-खाते आखिर फर्श पर गिर जाती है। मोना समझ नहीं पाती कि उस आदमी के आने से उसका बाप इतना गुस्सा क्यों हो जाता है, और जब वह आता ही है तो फिर लाख पूछने पर भी माँ बताती क्या नहीं?

एक दिन स्कूल में जल्दी ही छुट्टी हो गई तो मोना कुछ पहले ही घर लौट आई। कमरे का दरवाजा अन्दर से बन्द था। मोना ने खिडकी की किवाड पर आँख रखे अन्दर झाँककर देखा कि माँ सो रही है या जगी हुई है। मोना ने देखा कि उसकी माँ और वह आदमी दोनो बिल्कुल नगे पडे हैं, एक-दूसरे से चिपके दोनो ही बहुत खुश लग रहे हैं, माँ हल्की-हल्की मुस्करा रही है, कभी-कभी वह आदमी माँ के होठ पर अपने होठ चिपका दे रहा है। मोना ने माँ को इतना खुश कभी नही देखा। मोना ने दरवाजा नहा खटखटाया और चुपके-से मैदान से सटी उस दीवाल के पास आकर खडी हो गई। फिर दीवाल की आड में मुँह छुपाकर मोना ने खुद भी हँसने की कोशिश की। उसे लगा हँसना अब पहले-सा मुश्किल नहीं रहा। मोना को लगा अब हँसने से उसका चेहरा विकृत नहीं होगा और वह भी माँ की तरह हँस सकती है।

एक नए अहसास के साथ मोना कमरे में लौट आई। वह आदमी जा चुका था। कमरे का दरवाजा अन्दर से खुला था। मोना चुपके-से कमरे में घुस आई। बिस्तर पर माँ लेटी पडी थी। मोना ने माँ को जगाया, हालाँकि मोना जानती थी कि माँ सो नहीं रही है। माँ ने हँसकर कहा वही हँसी जिससे चेहरा विकृत नहीं होता, 'आज बडी जल्दी लौट आई स्कूल से?'—'हाँ।' मोना ने जवाब दिया—'आई तो मैं पहले ही, लेकिन ' मोना रुक गई। माँ की भौंहे सिकुड गई—'लेकिन क्या?' 'कुछ नहीं' मोना ने कहा 'बहुत भूख लगी है, खाना दो माँ।' माँ की भौंह फिर अपनी सहज रेखाओ पर लौट आई। माँ ने खाना निकाल दिया। एक कोने मे बैठकर मोना चुपचाप खाने लगी।

तभी तूफान की तरह दरवाजे को झटके-से खोलता उसका बाप कमरे में दाखिल हुआ। बाप को इतनी जल्दी दफ्तर से लौटते देख मोना को आश्चर्य हुआ। कपडे उतारकर बाप ने लुगी चढा ली। फिर उस छोटे-से कमरे के एक कोने से दूसरे कोने तक टहलने लगा। बाप की इस मुद्रा से मोना परिचित है। वह समझ गई कि अभी कुछ झमेला शुरू होगा। वह जल्दी-जल्दी खाना खाने

लगी ताकि झमेला शुरू होने से पहले ही वह चुपके-से कमरे से निकलकर बाहर मैदान मे जा खडी हो सके, लेकिन उसे इसका मौका नहीं मिला। तभी उसके बाप ने माँ का एक हाथ कसकर पकड लिया और दाँत पीसता हुआ माँ की ओर देखने लगा। हमेशा की तरह मार खाने की तैयारी मे माँ गर्दन झुकाए खडी रही। तभी मोना का बाप चिल्ला उठा—'बोल स्साली, अभी-अभी वही हरामजादा इस कमरे से गया है ? बोल, बोल, बोलती क्या नही ? आज मै तेरा खून पी जाऊँगा।'

माँ सिर लटकाए चुपचाप खडी रही। तब तक बाप न कसकर एक तमाचा जड दिया। माँ छिटककर फर्श पर गिर पडी। बाप ने झटके-से माँ को फर्श पर से उठाया, 'बोल, वह आया था कि नहीं ? हरामजादी, आज तू बचकर नहीं निकल सकती।' फिर एक-दो-तीन ताबडतोड अनगिनत थप्पड-घूँसे पडने लगे। माँ के शरीर पर कई जगहो से खून की धारा वह निकली। माँ फर्श पर सपाट गिर गई।

मोना सामने थाली लिये भागने के मौके की तलाश म चुपचाप बैठी थी। तभी उसके बाप की नजर उस पर पडी। बाप धीरे-धीरे उसके पास आया। फिर मोना से पूछा—'मोना, उस आदमी को तूने देखा है इस कमरे म ?'

'कौन आदमी ?' मोना ने पूछा।

'वही आदमी,' बाप ने समझाते हुए कहा, 'वही काला-सा, लम्बा-सा, घुँघराले बाल वाला आदमी। आया था अभी यहाँ ? तूने देखा है ?'

मोना जानती थी, उसका बाप किस आदमी की बात कर रहा है। उसके सामने कुछ देर पहले का वही दृश्य उभर आया—वह आदमी नगा माँ भी नगी, दोनो एक-दूसरे से लिपटे, माँ के चेहरे पर अजीब-सी खुशी की झलक वह आदमी माँ के होठ पर अपने हाठ चिपका देता है माँ हँसती है, हँसने पर माँ कितनी अच्छी लगती है। फिर उसे याद आता हे मैदान से सटी दीवाल की आड मे मुँह छिपाए उसके हँसने की कोशिश, उसका सही-सही हँस पाने का एहसास। मोना गदन झुकाकर फर्श पर माँ को देखती है। चेहरे पर कई जगह खून के धब्बे, माँ का चेहरा उदास, भावहीन। मोना को आश्चर्य होता है अभी कुछ ही देर पहले माँ कितनी खुश थी, कितना-कितना हँस रही थी।

मोना बाप की ओर देखती है। कुछ देर चुपचाप देखती रहती है। बाप फिर अपने सवाल को दुहराता है—'वह आदमी आया था यहाँ ?'

मोना धीरे-से सिर हिलाती है। जवाब देती है—'नहीं, वह तो नहीं आया था वह 'वह तो यहाँ कभी नही आता है।'

मोना सोचती ह कि उसके आने स माँ हँसती और बाप चिढता हे। यदि वह कह देगी, उसका आना बता देगी तो माँ के चेहरे पर वेसी हँसी वह दोबारा नहीं देख सकेगी। वह तुरन्त गर्दन हिलाकर कहती है, 'नही, वह तो नहीं आया था, वह तो यहाँ कभी नही आता।'

आदिपर्व

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

उसने अपने सुन्दर चेहरे को दर्पण मे देखा—गोरा रग, तीखे नाक-नक्श बडी-बडी आँख, पतले गुलाबी होठ।

वह एक बार अपने विषाक्त सच को विस्मृत करके उन्हे देखती रही। उसके भीतर अनवरत सघर्ष चल रहा था। क्या हो गया एकाएक यह? ल्यूकेमिया ब्लड-कैंसर लाइलाज बीमारी। वह सहसा पतझड के पेड की तरह उदास हो गई। जाडे की पीली धूप की तरह उदास। वह पलँग पर, कटे पेड की तरह पड गई। मृत्यु-सत्रास उसके भीतर गहराने लगा। अब उसकी मृत्यु निश्चित है, सिर्फ तिथि-निर्धारण बाकी है।

खिडकी के पर्दे को हटाकर हवा का एक तेज झोका जबर्दस्ती भीतर घुस आया। हवा मे ठडेपन के अहसास ने उसके दाएँ कपोल को स्पर्श किया। वह सिहर गई। उसने सोचा—आखिर उसके जीवन की सार्थकता क्या है? ईश्वर ने उसे जन्म ही क्यो दिया? दिया तो पराए कर्ज की तरह उसे कर्त्तव्या का कर्ज क्यो दिया? एक बूढे अपाहिज बाप और दो नन्हे-नन्हे मासूम भाइयो का दायित्व, जिनके प्रति वह कभी भी सख्त और कठोर नहीं हो सकी। उसका उनके प्रति रवैया मुलायम और करुणाजनक ही रहा। उनके लिए उसकी किशोर हथेलियाँ असमय हो सख्त हो गईं। वह घर का काम सिलाई

आर पढाई साथ-साथ करती थी। उसे प्रतीत होता था कि सृष्टि का सोन्दर्य आर सुन्दर वस्तुएँ उसके लिए बनी ही नहीं ह।

इस पर भी कोई उसे कर्त्तव्यनिष्ठ, साहसी ओर दिलेर नहीं कहता बल्कि उस पर दया-भरे सवादो को ही उछाला गया, जैसे—बेचारी हतभागिनी ह। परिवार का बोझ ढोते-ढोते मर जाएगी! कोई सहारा नहीं इस अभागी का! एक अकेली जान है बेचारी!—वगरह-वगेरह।

उसे ये तरस-भरे वाक्य तीर की तरह लगते थे। जब वह किसी की दया पर नहीं जीती तो लाग उस दीन-हीन क्या समझत ह ? कभी-कभी वह गुस्से म भर जाती थी कि वह उनका मुँहतोड जवाब द द। उन्ह फटकारकर कहे कि वे अपनी यह सहानुभूति और तरस अपने पास ही रखे। पर उसका गुस्सा उसके भीतर घुटकर रह जाता था।

वह बी०टी०सी० पास करके प्राइवेट स्कूल म शिक्षिका बन गई। एक स्थायी आय होने लगी। पर उसने अपनी पढाई भी जारी रखी। पच्चीस वष की उम्र मे आते-आते वह बी०ए० बी०एड० हो गई। साथ ही उसके पिता की भी मृत्यु हो गई। उसका एक भाई क्लर्क हो गया। वह अपनी पत्नी को लेकर अलग रहने लगा। दूसरा बी०ए० फाइनल म था। उसने राहत की साँस ली। उसे लगा जैसे उसके सिर पर बोझ का जो बडा गट्ठर था, वह काफी हल्का हो गया है। भाई के अलग होने का उसे कोई दु ख नहीं था।

जब यतीन उसक प्रति आकर्षित हुआ तो उसे पहली बार वह मधुरानुभूति हुई कि उसके भीतर भी धड़कता हुआ दिल है। बरसो वह दिमाग के निर्देश पर जीती आई थी। इधर यतीन उसके दिल के दरवाजे पर बार-बार दस्तक द रहा था। उस बहुत सुखद और अच्छा लगा।

यतीन ने चद मुलाकातो के बाद उससे कहा—"मे तुमसे बहुत प्यार करने लगा हूँ। कभी-कभी अनचाहे ही किसी से इतना जुडाव क्या हो जाता है ?"

वह भी बहुत सवेदनशील हो गई। बोली—"मुझे कल एक विचित्र सपना आया था यतीन! मै जैसे पथरीली जमीन हूँ—बजर और व्यर्थ। अचानक तुमने उस पर अपने पाँव रखे और हरियाली उग आई। क्या पुरुष का स्पर्श स्त्री के लिए इतना सुखकारी होता है ?"

"स्त्री रास्ता होती है—जीवन-पथ!" वह कविता करने लगा—"उसके बिना पुरुष पुरुष कहाँ होता है ? जड हो जाता है वह। स्त्री उसे चैतन्य बनाए रखती है।"

यतीन की सगत म उसे महसूस हुआ कि स्त्री वास्तव म कितनी महत्त्व र्ण है। यदि स्त्री महत्त्वपूर्ण है तो वह भी तो महत्त्वपूर्ण है।

दोनो विचारो व भावना के स्तर पर बहुत नजदीक आ गए। यतीन और गायत्री ने तय कर लिया कि वे जीवन-साथी बनगे।

गायत्री यतीन मे अपने जीवन का मधुमास समझती थी। यतीन भी उसे सभी दृष्टियो से पसद करता था। दोनो विवाह करना चाहते थे। परन्तु यतीन ने उसे कहा कि उसकी जल्दी ही नौकरी लगनेवाली है। फिर वे शादी करके स्वतत्र रूप से अपना जीवन जिएँगे।

इस बीच उसे डायरिया हो गया। उसकी हालत चिंताजनक हो गई। उसे अस्पताल मे भर्ती कराया गया है। तब यतीन कहीं बाहर गया हुआ था। उसके छोटे भाई सुलभ के मित्र शेषन ने उसकी बहुत सेवा की। वह ज्यादा आकर्षक युवक नही था, पर सेवाव्रती बहुत था। बहुत रूखे स्वभाव का था। उसे अपने स्वभाव के प्रतिकूल हर बात आहत करती थी।

गायत्री उसकी आँखो मे साँप की-सी चमक देखती थी। उसे अनायास लगता था कि यदि उसे अवसर मिले तो वह उसे अजगर की तरह निगल जाए। जब यतीन आ गया तो शेषन ने आना बद कर दिया जैसे उसकी ड्यूटी खत्म हो गई हो।

यतीन ने पछतावे के कई वाक्य कहे। यह भी कहा कि वह होता तो उसे किसी सरकारी अस्पताल की जगह अच्छे नर्सिंग होम मे भरती कराता। गायत्री चुप रही। जब यतीन ने अपनी सारी बाते कह डालीं, तो उसने कहा—"यतीन मेरे छोटे भाई सुलभ और शेषन ने मेरी बडी सेवा की है। शेषन ने तो नि स्वार्थ भाव से की, मेरे छोटे भाई के मित्र होने के कारण।" गायत्री को सहसा शेषन की साँप की-सी आँख याद आ गईं। उसे लगा कि वह उसके जिस्म पर रेग रहा है।

यतीन ने कहा—"अब मुझ शीघ्र ही नौकरी मिल जाएगी और हम जीवन-भर के लिए एक हो जाएँगे।"

गायत्री ने कोई उत्तर नहीं दिया।

गायत्री स्वस्थ होकर काम पर जाने लगी। यतीन नौकरी के लिए प्रयासरत था। जैसे-जैसे दिन बीत रहे थे, वैसे-वैसे उसका तनाव बढ रहा था। भावुकता-भरी बाते कम हो रही थीं। सपनीले ससार की यात्राएँ भी बोनी हो गई थीं।

शेषन को लगा जैसे उसके पाँव के नीचे जो हरीतिमा का चकोर बना था वह एकाएक किसी अभिशाप से जल गया है। वह करे तो क्या करे। गायत्री को बताए या नहीं ? द्वन्द्व 'हाँ-ना' का द्वन्द्व।

गायत्री बार-बार पूछती—

''रिपोर्ट आ गई शेषन ?''

''अब आएगी।'' वह झूठ बोलता।

अत मे उसने गायत्री के छोटे भाई को सब-कुछ बता दिया। वह तो फूट-फूटकर रोने लगा। शेषन की आँख भर आई।

उसने शेषन को कहा—''शेषन! यह सच है, मृत्यु का सच। इसे हम अधिक नहीं छुपा सकते। मेरी दीदी को बता दो। अब वह ज्यादा नहीं जीएँगी।''

लेकिन एक दिन डॉक्टर ने ही गायत्री को बता दिया। सुन्न हो गई गायत्री। उसकी आँखे सूने आकाश की तरह हो गईं।

''क्या यह सच है डाक्टर ?''

''ऐसा मजाक तो कोई दुश्मन भी नहीं करता।'' डॉक्टर ने दु खी स्वर मे कहा।

''मैं कब तक जीऊँगी ?'' उसकी आँखे भर आईं।

''जब तक ईश्वर चाहेगा।'' डॉक्टर ने दीर्घ श्वास लिया।

''ईश्वर!'' उसे लगा कि इस शब्द के उच्चारण के साथ एक तिक्तता उसकी जीभ पर तैर आई है। वह सोच बैठी है कि यदि यही ईश्वर है तो उससे अधिक कोई निर्मम है ही नहीं। वह चिंता मे रहने लगी।

शेषन उसे देखकर मुस्कराता था। कहता था—''गायत्री! जन्म के साथ ही मृत्यु का सफर शुरू हो जाता है। एक-एक दिन कम होकर जीवन मृत्यु के निकट जाता रहता है। जब मृत्यु निश्चित हो तो आतरिक-बाह्य इच्छाआ की पूर्ति करनी चाहिए। नो वरीज! मृत्यु का सहर्ष वरण करो।''

वह मुस्कराता था—एक जीवन-भरी मुस्कान जिसमे अपार दु ख छुपा रहता था। उसकी बातो पर कभी-कभी वह स्वय मुस्करा देती थी। सोचती थी—कितना पाखड कर रहा है यह।

यतीन इन्टरव्यू देकर आ गया। वह घर गया तो उसे पता चला कि गायत्री को ब्लड-कैंसर हो गया है और वह अस्पताल मे भर्ती है। वह अस्पताल की ओर भागा।

गायत्री उसे देखकर मुस्कराई। यतीन व्यग्रता से बोला—"यह मैं क्या सुन रहा हूँ?"

"सच सुन रहे हो।"

"हे भगवान! अब क्या होगा? इस भरी जवानी में यह रोग! क्या इलाज चल रहा है? मैं तुम्हारा अच्छी तरह इलाज कराऊँगा।"

तभी शेपन आ गया। वह उसे बाहर ले-जाकर गंभीर स्वर में बोला—"क्या मृत्यु का कोई इलाज होता है यतीन जी?"

"सुनिए शेपन जी! आप हताश करने की बातें मत कीजिए। वह तो एक बीमारी है और हर बीमारी का इलाज होता है।"

शेपन ने कंधे उचकाकर कहा—"आप इसकी गलत परिभाषा कर रहे हैं। यह सचमुच मृत्यु है। मृत्यु से व्यर्थ की लड़ाई करके आप दुःखी ही होंगे। आपको शायद पता है कि इसका इलाज अमरीका में होता है। उतना पैसा हम लोगों ने सपने में भी नहीं देखा है। आप बेकार हैं, मैं क्लर्क हूँ। अतः कोई व्यवस्था नहीं हो सकती। गायत्री जी प्राइवेट स्कूल में हैं। ऐसी स्थिति में हम मृत्यु को कुछ समय के लिए टाल तो सकते हैं, पर उसे सदा के लिए भगा नहीं सकते।"

"बहुत ही क्रूर हैं आप!" यतीन ने नाराजगी प्रकट की।

"आप मुझे गलत समझ रहे हैं।" शेपन ने कहा—"मैं चाहता हूँ, यह बहादुर की तरह मृत्यु का सामना करें और हम इन पर दया न करें। दया इन्हें पीड़ा देती है, परेशान करती है।"

वे दोनों गायत्री के पास आ गए। शेपन ने प्रसंग बदलते हुए कहा—"बार-बार खून चेंज कराना होगा। मैं इस बार इनका खून बदलवाकर इन्हें घर ले जाऊँगा। अस्पताल में मरीज अपने को मरीज के सिवाय कुछ और नहीं समझ सकता। घर आखिर घर होता है। इसकी दीवारों पर जिंदगी के इतिहास के पन्ने चिपके रहते हैं। सुख-दुःख, गमी-खुशी, रोना-हँसना, रूठना-मनाना सभी कुछ चिपके रहते हैं।"

"मैं अब घर ही चलूँगी।" गायत्री ने अपनी इच्छा बताई।

यतीन ने उसके हाथ पर हाथ रखकर कहा—"गायत्री! तुम्हें कैंसर है। तुम्हें यह पागलपन नहीं करना चाहिए। मेरी तो रातों की नींद और दिन का चैन चला गया है। खाना भी खाने का मन नहीं करता। क्या दंड दिया भगवान ने तुम्हें! मुझे तुम पर बड़ी दया आती है।"

गायत्री रो पडी।

यतीन उसकी पीठ पर हाथ फेरकर फिर बोला—"हिम्मत रखो। रोने से कुछ भी नहीं होगा। अब जो शेष जीवन है, उसे भगवान के सहारे ।"

शेपन ने बीच मे कहा—"भगवान के नाम पर ? उस भगवान के नाम पर जिसने इन पर जरा भी दया नहीं की ? मैं कहता हूँ कि इन्हे हँसी-खुशी से जीना चाहिए।"

यतीन ने इसका विरोध किया। उसका कहना था कि वह दया की पात्र है। पर गायत्री स्वय नहीं चाहती थी कि कोई उस पर दया करे। उस दिन के बाद तो उसे दया-भाव व कारुणिक सवाद सुहाते ही नहीं थे। यतीन का व्यवहार तो उसे असह्य लगने लगा। उसे महसूस हुआ कि उसकी निश्चित मृत्यु जानकर उसके भीतर अलगाव और अरुचि जनम गई है। उसकी आत्मीयता की जगह औपचारिकताएँ लेती जा रही हैं। वह दूसरो की तरह उस पर दया कर रहा है। वह दया से घृणा करती थी। उसे उन सवादो से चिढ हो गई थी जो उसे दीनता व मृत्यु का अहसास कराते थे।

एक दिन यतीन ने उससे पूछा—"तुम्हारी कोई अतिम इच्छा ?"

उसकी आँखो मे गीलापन तैर गया। वह बारूद की तरह फट पडी—"मैं कोई फाँसी चढन वाली मुजरिम हूँ जो तुम मेरी अतिम इच्छा जानने के लिए आए हो ? यतीन! तुम मुझे मृत्यु का अहसास करा-करा के बहुत दु खी कर रहे हो। तुम्हारे शब्दो का दया-भाव मुझे जोक की तरह चूसने लगता है। तुम्हारा सच क्रूरता का मखमली लबादा ओढे हुए है। नहीं चाहिए मुझे तुम्हारी सहानुभूति, दया-भाव और कारुणिक बाते। मैं सोचती हूँ कि कभी-कभी आदमी प्रेम के वास्तविक सच को इसलिए नहीं समझ सकता क्योकि उसके चारो ओर भावनाओ की रोशनियाँ होती हैं।"

बोलते-बोलते उसका दम फूल गया था। वह हाँफने लगी थी। यतीन ने उसे स्पर्श करना चाहा तो उसने मना कर दिया—"मुझे मत छुओ। अन्यथा तुम्हे भी मेरी भयानक और घातक बीमारी लग जाएगी।"

"तुम मेरी बात पर व्यर्थ ही उत्तेजित हो रही हो।" यतीन ने परेशानी से कहा, "मैंने ऐसा कब कहा ?"

"नहीं, मुझे घर जाना है अब। मैं साफ-साफ कह दूँ कि मुझे तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं।" उसने एक पल रुककर कहा—"मैं जानती हूँ कि दूसरे को सुख देना कितना कठिन है। किसी बीमार पर दया के फूल बरसाना

पत्थर बरसाने के बराबर होता है।''

यतीन को गुस्सा आ गया। इस बीच गायत्री कई बार उसका अपमान कर चुकी थी। मृत्यु का कठोर सच जानने के बाद भी गायत्री का यह अभिमान क्या आत्मवचना नहीं ? पुरुष प्रेम मे कोमल और शीतल रहता है, पर वह अपने पौरुष पर अपमान के अधिक आघात नहीं सह सकता। वह आहत होता है। यतीन भी आहत हो गया। वह बाहर निकल गया।

गायत्री रो पडी।

इस बार खून बदलने के बाद गायत्री घर आ गई। यतीन ने आना लगभग बद कर दिया। वह कभी-कभी आता था आर औपचारिक बात करके चला जाता था। गायत्री सोचती थी कि मृत्यु की प्रतीक्षारत स्त्री से भला कोई आदमी क्यो प्यार करेगा ?

पर शेषन अलग ही मिट्टी का बना हुआ था। वह उसे बेहद चाहता था। शुरू से ही उसका झुकाव उसके दैहिक सान्दर्य की ओर था। पहले गायत्री को उसका देखना एक उन्मादित व्यक्ति के देखने जैसा लगता था, पर अब उसे उसमे एक गहरा अपनापन लगता था। शेषन काफी खुला-खुला बर्ताव करता था। उसके स्पर्श म ठडापन नहीं था। आज भी वह अपने मरे-मरे स्वर को उस पर उलीचना चाहता था। अपने भीतर के उद्दाम प्रेम के अर्घ्य को उसकी हथेलियो मे उँडेलना चाहता था।

वह उसकी प्रतीक्षा करने लगी।

यतीन का आना और जाना अब उसे अर्थहीन लगता था। शेषन बराबर आता था। उसे स्पर्श करके उसकी आँखो मे झाँकता था। उसे लगता कि गायत्री की आँखे फैलते-फैलते खुला आकाश हो गई हैं। उनम इच्छाओ के तरह-तरह के पखेरू उड रहे हैं। ये पखेरू चहचहा रहे हैं, चीख रहे हैं, क्रदन कर रहे हैं क्याकि वे भूखे और प्यासे हैं। आज से नहीं बरसा से उडते-उडते थक गए हैं। थकान से अब उनके टूट जाने का खतरा है।

शेषन ने आज आते ही उसे 'हैलो' कहा। फिर उसके पास बैठते हुए कहा ''आज तुम बडी तरो-ताजा लग रही हो ?''

''मैं सूर्यमुखी हूँ, सूर्य उगने से खिल जाती हूँ। मेरा मतलब समझ गए ना आप ?''

''समझ गया। शेषन स्वय सूरज है गायत्री। यदि तुम सूरजमुखी हो तो मैं सूरज हूँ, तुम्हारा सूरज।''

"शेषन! प्रेम मील का पत्थर नहीं है। वह रास्ता है। ऐसा रास्ता जो कई बार चौराहे पर नया मोड ले लेता है।"

"हाँ गायत्री! प्रेम हृदय की एक प्रबल भावना है जिसकी अर्थवत्ता सदर्भों के साथ बदलती है। ओह! बहुत गर्मी है। आज सवेरे से हमारा पानी का नल नाराज है।" उसने हँसते हुए कहा, "तुम कहो तो मैं नहा लूँ?"

"बेशक!"

वह नहाकर पहलेवाले कपडे पहनकर बाहर आया तो गायत्री ने मुस्कराकर कहा, "अरे, यह क्या! नहाकर वही कपडे पहन लिये?"

"फिर क्या पहनूँ?"

"मेरी साडी को तहमद बनाकर पहन लो।" वह बोली। गायत्री ने शेषन की आँखो म एक अजीब-सी पुरुष-सुलभ चमक व इच्छा देखी। वह समझ गई कि शेषन क्या चाहता है। अत बोली—"शेषन! तुम जब पहली बार आए थे, तभी मैंने तुम्हारी नीयत जान ली थी। मे जानती हूँ कि तुम मेरे समीप आना चाहते थे। तब मुझे तुम्हारी यह नीयत अच्छी नहीं लगी। नीचता-सी लगी। पर धीरे-धीरे मैं तुम्हारे उपकारा से दब गई। मृत्यु की निश्चितता जानकर और यतीन की स्वार्थपरता पहचानकर में तुम्हे चाहने लगी हूँ।"

"तुम सच कहती हो गायत्री!" शेषन ने जैसे सच को स्वीकार करते हुए कहा "मैं उसी बदनीयती से आया था पर पशुता करना भी मेरे वश मे नहीं है।"

"जानती हूँ। हर व्यक्ति के किसी को जीतने के तरीके अलग-अलग होते हैं।" वह मुस्कराई—"आओ, मेरे पास आआ शेषन! मुझे अपनी बाँहो म समेट लो। खडे क्यो हो? बस डर गए तुम?" गायत्री ने कहा—"कुछ अनायास-अनहोना करने के लिए दुस्साहस दिखाओ शेषन! स्त्री के जीवन की सार्थकता सृजन मे है। वह सृष्टिकर्त्री होती है, पर पुरुष के सहयोग के बिना वह अधूरी रहती है।" स्पष्ट प्रस्ताव और आतरिक इच्छा का उद्वेग था उसके शब्दो मे—"मैं कोई भूमिका नहीं बाँधना चाहती, न मैं आदर्श-भरे शब्दो को उछालना चाहती हूँ। स्त्री इस सच का भोगे बिना मर जाए तो जीने का कोई मतलब ही नहीं है। मृत्यु से पूर्व मैं समर्पण के विराट पथ को देखना चाहती हूँ, समझना चाहती हूँ। मैं देखना चाहती हूँ कि आदम-हव्वा का आदिपर्व दरअसल क्या था?"

शेषन अब भी उसे घूर-घूरकर देख रहा था। उसकी यह इच्छा वासना

तो नहीं हो सकती। वासना म तो उत्तेजित उच्छ्वास होते हैं, उद्दामता होती है। उसकी अनत आँखो म तो गभीर याचना है—प्रकृतिजन्य याचना।

शेषन ने उसे देखा। गायत्री को लगा कि उसकी आँखो म गहरा प्रेम है, कोई दया-भाव नहीं, कोई करुणा नहीं, कोई तरस नहीं। सिर्फ एक आकर्षण-भरा प्रेम। अदम्य इच्छाओ से भरी समर्पण की भावना।

भूल गए दोनो अपना मौजूदा वजूद। कट गए वे अपने ओढे हुए लबादा से। रह गए मात्र स्त्री-पुरुष। खालिस स्त्री-पुरुष।

धीरे-धीरे गायत्री मृत्यु के नजदीक आती गई। शेषन फिर भी हँसता था हँसने की बात करता था। पर कहीं भीतर से मृत्यु की भयावह आवाज सुनता था। गायत्री जैसे मृत्यु के भय से मुक्त थी। वह शेषन को कहती—"मैं मृत्यु की प्रतीक्षा नहीं करती। अब मैं जीवन के एक-एक पल को जी रही हूँ। मैं जी रही हूँ और मृत्यु मुझसे दूर भागती जा रही है। जीने की एक नई परिभाषा से म परिचित हो रही हूँ।"

शेषन भावुक होकर उसे अपने से चिपटा लेता, बाँहो म कस लेता जैसे मृत्यु उसे उससे छीनने का प्रयास कर रही हो और शेषन उसे रोक रहा हो।

"शेषन!"

"हूँ?"

"आदम-हव्वा का आदिपर्व स्त्री के जन्म-मृत्यु की सम्पूर्णता है। अब मुझे अपने मरने का कोई दु ख नहीं है।"

"लेकिन अब मुझे होगा।" वह दार्शनिक की तरह बोला—"क्या तुम्हारी मृत्यु मेरे एक पुरुष की एक बार मृत्यु नहीं जिसने तुम्हारे प्रेम को पाया है? बाद मे वह पुरुष कहाँ होगा? लगता है कि तुम्हारी मृत्यु के साथ वह भी मर जाएगा।" उसने उसे ताबड़तोड़ चूमना शुरू कर दिया। वह रो पड़ा। गायत्री ने आँखे मूँद लीं जैसे वह कोई सुहाना स्वप्न देख रही हो। शेषन की गोद म लेटे-लेटे वह बुदबुदाई—"शेषन! मेरे सिर म अजीब-सी सरसराहट हो रही है। मुझे सब-कुछ पीला-पीला दिखाई दे रहा है।"

शेषन उसके बालो को सहलाता रहा। उसे प्यार करता रहा। थोड़ी देर [illegible] उसे हिलाया। लेकिन वह निष्प्राण हो चुकी थी।

शेषन ने भरी आँखो से उसे देखा। फिर उसे बिस्तर पर सुलाकर [illegible] वह उसकी देह पर झुककर फूट-फूटकर रोने लगा। [illegible] सब शून्य हो गया है।

एक प्रतीक पुरुष

हरदर्शन सहगल

किसी के सीने का उभार अनायास मुझे अपनी ओर आकर्षित कर लेता है 'एकबारगी उससे आगे निकल जाता हूँ। फौरन अपने पतन का एहसास होते ही चाल ढीली कर देता हूँ तो वह दुबारा नजर आ जाती है।

ऐसा कई बार हो चुका है, जब अपने को रोकते-रोकते भी किसी की तरफ खिंच गया हूँ। बाद मे गलती के लिए अपने से जाँच-पडताल की है। प्रश्न पूछे हैं। उत्तर दिए हैं। आइदा 'स्थिर' रहने के आश्वासन 'माफियाँ सब-कुछ, लकिन फ्रि कुछ दिन गुजरते न गुजरते नई शुरुआत हो जाती है और वही पुराना अत।

पतन से मुक्ति पाने के लिए एक रास्ता भी खोज निकाला है—अकेले बाजार न जाने का। किंतु इसका पालन करना, बहुत बडा बधन लगने लगा है। दरअसल जब मेरा कोई साथी बाजार मे मेरे साथ चल रहा होता है, तो मुझे भरा-पूरा बाजार बेरौनक और सूना-सूना लगने लगता है। हर कदम पर यह एहसास होता रहता है—मेरा साथी एक सिपाही है और मैं उसके साथ बेडियाँ पहने हुए चल रहा हूँ। इसलिए अपना सिपाही स्वय बनने की आदत डाल रहा हूँ।

उसके दुबारा नजर आते ही मुझे यह सब 'आगे-पीछे का खेल' लगने

लगता है। अभी से सचेत हो जाना चाहता हूँ, क्योकि यही खेल बाद म मुझे बेहूदगी और बेहयाई का प्रतीक लगने लगेगा। पस्त होने से पूर्व ही अपने को दूर' 'सडक के एक किनारे पर घसीट ले जाता हूँ।

किंतु लगता है, मुझसे कुछ जुड गया है—उसका मोहिनी चाल से झूमते हुए मुझसे इतना सटकर निकलना या सेट की भीनी-भीनी खुशबू, या फरफराती गुलाबी प्रिंटिड साडी, या पेट से खूब ऊपर चढा हुआ, गाँठवाला ब्लाउज।

दूर, स्वीट-हाउस पर रुकती हुई वह अब भी दिखाई दे रही है। यहाँ खडे-खडे यूँ ही समय नष्ट करने की बात अखरने लगती है। पत्नी की लड्डुओ के लिए फरमाइश का ध्यान हो आता है, किंतु पीला रग मुझे पसद नहीं। रसगुल्ले खरीदने को सोचता हुआ, दुकान तक पहुँचता हूँ। अब तक वह दुकान छोडकर आगे जा चुकी है। इन दिना बडी दुकान से महँगी मिठाई लेने की बात मूर्खतापूर्ण लगने लगती है। अमरूद या नाशपाती मिठाई की तुलना मे सस्ता एव लाभदायक है। तुरत यह भी अनुमान लगाने लगता हूँ कि अब वह कहाँ गई होगी? उसके सुदर सघन बाल दृष्टि म तैर जात हैं। पत्नी के छीज गए बाला के लिए 'झरन' के प्रयोग की योजना को कार्यान्वित करने की सूझ आई है। मॉडर्न जनरल स्टोर मे घुस जाता हूँ। अनुमान सच्चा, सुखद मन-मोहक। गुलाबी ब्लाउज से उगते चाँद की किरणे बहुत शीतल हैं। किंतु अपने नैतिक पतन का ध्यान आते ही, यही शीतलता आग बन जाती है। कदम कुछ अटक-से जाते हैं फिर दुकान से बाहर बढने लगते हैं।

"आप तो दोपहर को सामान लेने आया कीजिए।" दुकानदार मुझे जानता है।

"ऐसे सीधे निर्लिप्त व्यक्ति नहीं मिलगे इस युग मे, बिल्कुल गऊ—"। हमारे मुहल्ले का चाचा भी यहीं खडा है।

"कई आदमी भी महिलाओ-से शरमीले होते हैं।" कहते-कहते वह स्वय शरमा जाती है। उसका पूरा छरहरा बदन लुभावनी लोच खा जाता है। रमणीय दृश्य बडे शीशे से देखता हुआ मैं बाहर आकर एक ओर खडा हो जाता हूँ। शब्द फैल-फैलकर गोलाकार वृत्त बनाते हुए मेरी शराफत का विज्ञापन दे रहे हैं—गऊ नाम डाल रखा है मुहल्ले मे ।

दृष्टि मे धुध बढ गइ है। साथ ही साथ उस दृष्टि को अपने विराट-रूप के प्रति आदर से देख पाने के इतजार मे फट-फट जा रही है—महान् महान् ।

भरसक काबू पाकर घर की तरफ चल पडा हूँ। मेरे अत्यधिक शरीफ बने रहने का श्रेय मेरे बचपन के यारा-दोस्तो को, और मुहल्लेवाला को है जिन्हाने मुझे गऊ बनने पर मजबूर कर मेरे पुरुषत्व की हत्या की है। कहने को ये सब मेरे हमदम हें। दरअसल ऐसे कई हत्यारे मरे अतर् म, मेरे जन्म से पूर्व बैठे दिखते हैं। हमदम हत्यारे तो बाद मे पैदा हुए हैं मेरे जन्म के बाद।

दरी का आभास होत ही चाल कुछ तेज कर देता हूँ। तभी एक और उज्ज्वल शरीर पास से गुजरता है—'प्रिय रम्भा सूरोजा ।' मेरे मुँह मे मत्र है, और मैं उसके पीछे चलने लगता हूँ, अनधिकृत आकषण क कारण की तलाश मे। वह बगल के बँगले मे घुस गई है। कारण मैंने पकड लिया है। अपने घर मे वस कसाव का अभाव नितात ढीलापन ।

आज की रात घर मे न घुसने के लिए उकसा रही है। अर्से से एक के बाद एक कई शामे, कई रात एकदम विनष्ट होती चली जा रही हैं। जगल म मगल करने के कई प्रकार के यत्न जारी हैं—सदाचार सात्विक भोजन व्यायाम रामाटिक नॉवल्ज और फिल्मो से परहेज । ब्रह्मचर्य एव 'सैक्स का स्वभाव' पर मेरा विस्तृत प्रामाणिक तथा पारदर्शी ज्ञान। हा-हा-हा-हा। सब विफल—सब विफल। जाने कौन चिढा रहा हे मुझे।

सासाइटी मे शराफत का पुतला किंतु अपने अदर से पिटा हुआ मैं।

घर म घुसते ही तू-तडाक। कई दिना से चला आ रहा शीत-युद्ध भडक उठा।

''इतनी देर लगा दी दरवाजा खोलने मे। क्या ?''

''इतनी रात गए वापस लौटे हो। चार चीजा मे से कुछ भी नहीं लाए। बुद्धि सठिया गइ है।''

''मेरा पर्स हमेशा खाली करके रख देती हो। अबकी करो। हाथ तोड दूँगा।''

''आवारागर्दी करने लगे हो। सब जानती हूँ। बाहरवाला से ही शराफत के तगमे ले सकते हो।''

चेहरे पर कुढन। मैली धोती। बिखर उलझे बाल। छोटे-छोटे, गदे नाखून सब घृणित। मटमैला ब्लाउज ढीला सब ढीला। ब्रेसरी तक न होगी अदर—घृणित घृणित। बाजार और घर—कितने विरोधी। यौन विज्ञान के पडितो द्वारा दिए गए पत्नियो को सुझाव और यह। सिने तारिकाआ की

पोस्टरो पर कमनीय भगिमाएँ 'कालिदास और बिहारी की नायिका' और यह' 'यह! घृणित' 'घृणित' 'घृणित।

आगे बढकर उसका गला पकड लेता हूँ।

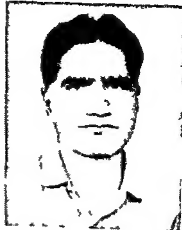
''हाय!'' वह जोर स चीखती है।

मर्यादा पर आए सकट से सचेत हो जाता हूँ—''तुझसे कम से कम एक साल तक न बोलूँगा।'' हाथ ढुलककर उसके घृणित वक्ष से छूते हुए नीचे गिर जाते है।

एक साल तक न बोलनेवाली बात दोहराता हुआ, अपने कमरे मे जाकर पड जाता हूँ। निश्चय पर दृढता की कई-कई परत चढाता चला जाता हूँ। अन्य कहीं सबध स्थापित करने की घृणापूर्ण योजनाएँ बनाते-बनाते सो जाता हूँ।

सुबह उठकर अपने को अपने सामने—अभियुक्त को जज के सम्मुख—पेश करता हुआ बयान देता हूँ—रात को पत्नी से अनुनय करके अपने कमरे मे लानेवाला व्यक्ति मैं नही था—मैं नहीं था।





हरदर्शन सहगल

जन्म

1935 कुदिया जिला मियावाली (अब पाकिस्तान)

प्रकाशित कृतियाँ

- 'मौसम', 'टेढे मुँह वाला दिन', 'मर्यादित', 'गोल लिफाफे', 'सरहद पर सुलह' (कथा सग्रह)
- 'सफेद पखो की उडान', 'टूटी हुई जमीन' (उपन्यास) 'छोटे कदम लबी राहे' (बाल उपन्यास)।
- बच्चो के लिए छह कथा-सकलन।

सपादन

'सदाए अदब'

(शिक्षा विभाग राजस्थान के लिए उर्दू साहित्य)

सम्मान-पुरस्कार

- राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर।
- सोवियत नारी—मास्को।
- चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
- परिवार कल्याण मत्रालय दिल्ली तथा अन्य कई सस्थाना से पुरस्कृत/सम्मानित।
- शोधार्थियो द्वारा उपन्यासो तथा कहानियों पर शोध-प्रबधा की प्रस्तुति।

सम्प्रति

रेलवे विभाग से सेवानिवृत्ति-पश्चात् स्वतन्त्र लेखन।

पता

5-ई-9 'सवाद' डुप्लैक्स कॉलोनी
बीकानेर (राजस्थान)-334003
दूरभाष 529067 फैक्स 544687